CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

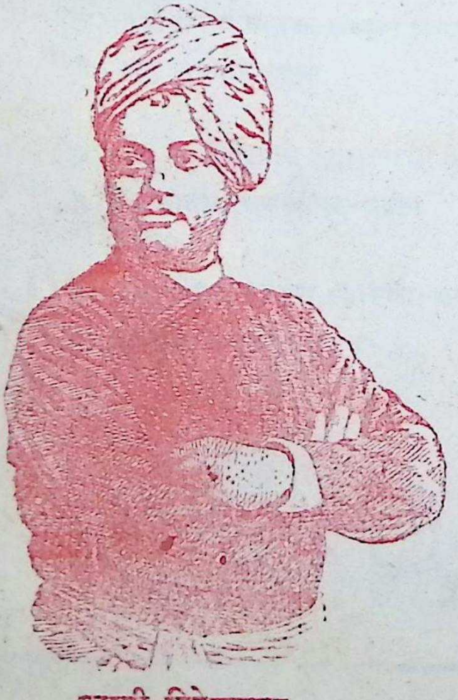

स्वामी विवेकानन्द

दिसम्बर १९६७

५० पैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

वर्ष ४८ : अंक १२ : कार्तिक : २०२४

स्वामी— स्वाध्याय-मंडल, पारडी [जि. बलसाड]

प्रधानसंपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक
श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए., शास्त्री, तर्कशिरोमणि

विषयानुक्रमणिका

१	मेधा देवी	[वैदिक प्रार्थना]	२७५
२	स्वामी दयानन्दका संस्कृत ग्रन्थ रचना कार्य	श्री भवानीलाल भारतीय	२७६
३	एक युवकके स्वप्न	मूल लेखक- नेताश्री सुभाषचन्द्र बोस अनुवादक- श्रीकृष्णदत्त	२८१
४	प्रो. मेक्समूलरके वेदभाष्यका मूल उद्देश्य	डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल	२८५
५	पं. सातवलेकर जीवन-प्रदीप	मूल लेखक— श्री पु. पां. गोखले अनु०— श्री श्रुतिशील शर्मा	२८९
६	आयुर्विज्ञान अथवा स्वास्थ्य-धर्म	डॉ. विश्वामित्र	९ से १६
७	ऋग्वेदका सुबोध भाष्य	पं. श्री. दा. सातवलेकर	३३ से ४८

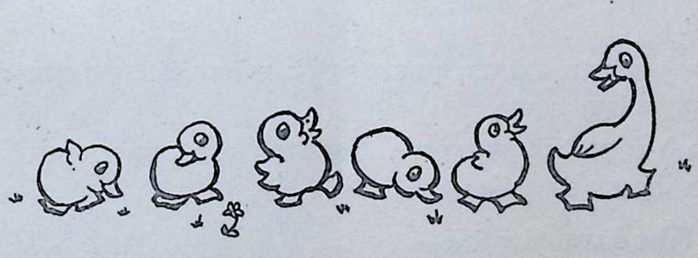

' वैदिक धर्म ' वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५० डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'संसारके पुस्तकालयमें ऋग्वेद प्राचीनतम ग्रंथ है'। संसारका ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो ऋग्वदमें न हो। दार्शनिक, भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांसारिक आदि सभी विषयोंका समावेश ऋग्वेदमें है। अतः—

यदि आप जानना चाहते हैं

कि

(१) ऋग्वैदिक दार्शनिकता क्या है ?

(२) ऋग्वैदिक समाजशास्त्र क्या है ?

(३) ऋग्वैदिक भौतिकशास्त्र कैसा है ?

(४) ऋग्वैदिक अध्यात्मविद्या क्या है ?

(५) ऋग्वेदका सांराश क्या है ?

तो अवश्य ग्राहक बनिये—

म. म. पं. श्री· दा· सातवलेकर कृत

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(चार भागोंमें)

प्रकाशन कार्य आरंभ हो गया है। मंत्र, अर्थ, भावार्थ तथा हर मण्डलके अन्तमें उस मंडल का सारांश एवं कठिनस्थलोंका स्पष्टीकरण सभी कुछ पठनीय होगा। साइज– डबल क्राऊन ८ पेजी, सुन्दर कागज, पृष्ठ संख्या २५०० से ज्यादा, मूल्य मात्र २०) रु. प्रत्येक भाग, पर—

(१) जो पेशगी धन भेज कर इस ग्रंथके ग्राहक होंगे, उन्हें केवल ६०) में चारों भाग मिल सकेंगे।

(२) जो ग्राहक चारों भाग एक साथ खरीदेंगे, उन्हें इस ग्रंथके कुल मूल्य ८०) रु. पर २०% कमीशन दिया जाएगा।

(३) जो इस ग्रंथके कम से कम ७ ग्राहक बनायेंगे उन्हें लेखकके हस्ताक्षरके साथ चारों भाग मुफ्त भेंटस्वरूप दिए जाएंगे।

विशेष विवरणके लिए लिखें—

व्यवस्थापक—

स्वाध्याय-मण्डल पारडी,

पोस्ट– 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी),' पारडी [जि. बलसार]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

मेधा देवी

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं
ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिः
देवानामवसे हुवे ॥

(अथर्व. ६।१०८।२)

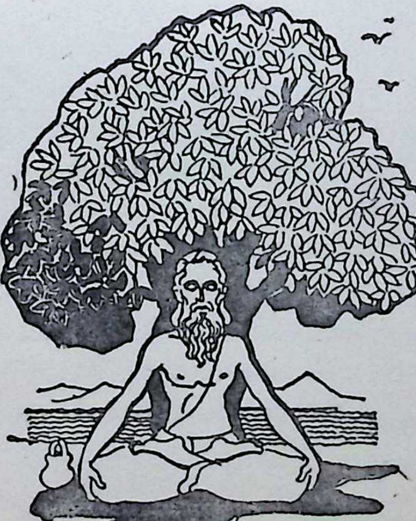

(अहं) मैं (प्रथमां ब्रह्मण्वतीं) सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानसम्पन्न (ब्रह्मजूतां) ज्ञानसे विस्तृत (ऋषिस्तुतां) ऋषियोंके द्वारा स्तुत (ब्रह्मचारिभिः प्रपीतां) ब्रह्मचारियोंके द्वारा पी गई (मेधां) मेधा देवीको (देवानां अवसे हुवे) देवोंकी रक्षाके लिए बुलाता हूँ ।

यह मेधा ज्ञानका आधार है । इसीके कारण ज्ञानका विस्तार होता है। सभी ऋषि इसकी महिमा गाते हैं। ब्रह्मचारी भी इसकी रक्षा करते हैं। ऐसी मेधादेवीको मैं अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वामी दयानन्दका संस्कृत ग्रन्थ रचना कार्य

(लेखक— श्री भवानीलाल भारतीय, एम्. ए.)

अपने ध्येयकी पूर्तिके लिये स्वामी दयानन्दने जिन साधनोंका उपयोग किया उनमें वाणी एवं लेख दोनों सम्मिलित थे। व्याख्यानों द्वारा धर्मोपदेश तथा ग्रन्थ रचना द्वारा सिद्धान्तोंका प्रतिपादन एवं प्रचार उन्हें अभीष्ट था। गुरुगृहसे दीक्षित होनेके अनन्तर स्वामीजीको संसारकी कार्यस्थलीमें उतर कर जनजागरणका कार्य करनेका अवसर २० वर्षकी अत्यल्प अवधिके लिये ही मिला। इस बीच उन्होंने देशाटन, व्याख्यान, शंकासमाधान, शास्त्रार्थ आदिके द्वारा तो जनमानसको अनुकूल बनाया ही, सहस्रों पृष्ठोंके विपुलकाय साहित्यकी रचना कर अपने दृष्टिकोणको पठित जनता तक पहुंचानेका प्रयास भी किया। स्वामी दयानन्द द्वारा निर्मित साहित्य सुविशाल एवं महत्त्वपूर्ण है। उनकी ग्रन्थ राशि संस्कृत तथा हिन्दीमें उपलब्ध है। अधिकाधिक लोगों तक अपने विचारोंको पहुंचानेकी दृष्टिसे जो ग्रन्थ उन्होंने मूलतः संस्कृतमें लिखे, उनका आर्यभाषा[1] हिन्दीमें अनुवाद करना भी उन्होंने आवश्यक समझा।

स्वामीजीका संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था। उनकी मातृभाषा यद्यपि गुजराती थी, परन्तु संस्कृतका उत्कृष्ट अभ्यास होनेके कारण धाराप्रवाह रूपसे संस्कृत बोलने तथा वार्तालाप एवं वादविवादमें भी संस्कृतका प्रयोग करनेमें उन्हें कठिनाई नहीं होती थी। हिन्दीमें व्याख्यान देने और लिखनेका उन्हें यत्नपूर्वक अभ्यास करना पडा था यह उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाशके द्वितीय संस्करणकी भूमिकामें स्वीकार किया है— "जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठनपाठनमें संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमिकी भाषा गुजराती होनेके कारणसे मुझको इस भाषाका विशेष परिज्ञान नहीं था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी।"[2] परन्तु यह बात संस्कृतके विषयमें नहीं कही जा सकती। संस्कृतमें विचाराभिव्यक्ति स्वामीजीके लिये सहज सिद्ध थी।

स्वामी दयानन्द रचित संस्कृत वाङ्मयका निम्न क्रमसे अध्ययन किया जा सकता है—

(१) ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और वेदभाष्य।

(२) खण्डनात्मक ग्रन्थ।

(३) वेदांगप्रकाश आदि व्याकरणके ग्रन्थ।

वेदभाष्य— स्वामी दयानन्दके धर्मान्दोलनकी नींव वेदप्रमाणवादका सिद्धान्त है। अपने समस्त मन्तव्योंको उन्होंने वेदोंके प्रमाणोंसे पुष्ट करनेका प्रयत्न किया। अपने सिद्धान्तोंके प्रचारार्थ उन्होंने जब आर्यसमाजकी स्थापना की तो उसके नियमोंका निर्धारण करते समय भी वेदोंके महत्त्वको दृष्टिपथसे ओझल नहीं होने दिया गया। आर्यसमाजका तृतीय नियम वेदको सब सत्य विद्याओंकी पुस्तक घोषित करता है तथा वेदका पढना पढाना और सुनना सुनाना सब आर्योंका परमधर्म बताता है। वेदका आधार लेकर चलनेवाले स्वामी दयानन्दके लिये यह भी आवश्यक था कि वे वेदके वास्तविक स्वरूप और अर्थको लोगोंके समक्ष रखते क्योंकि पर्याप्त समयसे वेदका नाम तो लिया जाता रहा था, परन्तु उसका अध्ययन और विचार शताब्दियोंसे लुप्त हो चुका था। जिन सायण, महीधर, उव्वट आदि भाष्यकारोंने समय समय पर वेदोंपर भाष्य और टीकायें लिखी थीं, वे भी स्वामी दयानन्दकी दृष्टिसे असंतोषजनक तथा अपर्याप्त थीं क्योंकि उनके द्वारा वेदोंका वास्तविक अभिप्राय और रहस्यका उद्-

१ स्वामी दयानन्द हिन्दीको "आर्यभाषा" के नामसे पुकारते थे।
२ सत्यार्थप्रकाशः भूमिका।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाहन होना तो दूर, उल्टे वेदोंके विषयमें भ्रमपूर्ण धारणायें ही अधिक फैलती थीं। अतः स्वामीजीने यह आवश्यक समझा कि वेदके यथार्थ अर्थोंका प्रकाशन भाष्यरचना द्वारा किया जाय। उनका यह वेदभाष्य संस्कृतमें ही लिखा गया और उनके वेतनभोगी पण्डितोंने उसका हिन्दी भाषानुवाद तैयार किया।

ऋग्वेदभाष्य— वेदभाष्यका रचना कार्य संवत् १९३३ वि. के आसपास आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम स्वामीजीने ऋग्वेदके प्रथम सूक्तका भाष्य लिख कर प्रकाशित कराया और उसे सम्मतिके लिये काशी, कलकत्ता तथा लाहौरके पण्डित समाजके पास भेजा। ऐसा करनेमें उनका लक्ष्य यह था कि यदि उनकी भाष्यरचना प्रणाली पर विद्वन्मण्डली कोई आक्षेप करती है तो पहले उसका ही समाधान किया जायगा, पुनः सम्पूर्ण भाष्यलेखनके कार्यको हाथमें लिया जायगा। वेदभाष्यके इस नमूने पर गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, काशीके प्रिन्सिपल आर. ग्रिफिथ, लाहौरके पं. गुरुप्रसाद शास्त्री तथा कलकत्ता संस्कृत कालेजके स्थानापन्न प्रिन्सिपल पं. महेशचन्द्र न्यायरत्नकी प्रतिकूल सम्मतियाँ प्राप्त हुई जिनका स्वामीजीने युक्तियुक्त समाधान किया। न्यायरत्न महाशय द्वारा किये गये आक्षेपोंके उत्तरमें तो उन्होंने "भ्रान्ति निवारण" शीर्षक एक पृथक् पुस्तक ही प्रकाशित कराई।

तत् पश्चात् भाष्य रचनाका कार्य प्रारम्भ हुआ। ऋग्वेद भाष्यका प्रारम्भ मार्गशीर्ष शु. ६, संवत् १९३४ के दिन आरम्भ हुआ।[3] यह भाष्य मासिक पत्रके रूपमें धारावाही छपता रहा और ग्राहकोंको मिलता रहा। स्वामीजी अपने जीवनकालमें इसे पूरा नहीं कर पाये। ऋग्वेद के ७ वें मण्डलके ६२ वें सूक्तके द्वितीय मंत्र पर्यन्त ही यह भाष्य उपलब्ध होता है, इस प्रकार उन्होंने ऋग्वेदके ५६४९ मंत्रोंका ही भाष्य किया।

भाष्य लिखनेकी स्वामीजीकी अपनी शैली है। प्रथम वे मंत्रके ऋषि, देवता, छंद तथा स्वरका संकेत देकर मंत्रके प्रतिपाद्य विषयका उल्लेख करते हैं; पुनः मूल मंत्रको लिख कर उसका पदपाठ लिखते हैं। पुनः पदार्थ, अन्वय और भावार्थ लिखते हैं। अपने अर्थकी पुष्टिमें स्वामीजी शतपथ आदि ब्राह्मणग्रन्थों, निरुक्त, निघण्टु और उपनिषदादिका प्रमाण यत्र तत्र देते चलते हैं। स्थान स्थान पर सायण आदि मध्यकालीन भाष्यकारों तथा मैक्समूलर, विल्सन आदि पाश्चात्य वेदज्ञोंके मतका खण्डन भी करते चलते हैं। स्वामी दयानन्दका वेदभाष्य मुख्यतया यास्क रचित नैरुक्त प्रक्रियाका आधार लेकर चलता है जिसके अनुसार वेदमंत्रोंका आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक– तीन प्रकारका अर्थ किया जाता है। वे वैदिक शब्दोंको यौगिक मानते हैं और निर्वचन तथा व्युत्पत्तिके अनुसार उनके एकाधिक अर्थ करते हैं। इस प्रकार ऋग्वेदके प्रथम मंत्रमें प्रयुक्त 'अग्नि' शब्दका अर्थ वे ईश्वर और भौतिक अग्नि दोनों ही करते हैं।

ऋग्वेद भाष्यमें प्राचीन आचार्यों द्वारा स्वीकृत खण्डन-मण्डन तथा शंका समाधानकी शैलीको भी स्वीकार किया गया है। यथा— "सायणाचार्यादिभिर्निरुक्तादिप्रामाण्ययुक्तं भाष्यं विहितं। कथं दोषवदिति। अत्रोच्यते। निरुक्तानि वचनानि तु लिखितानि। परन्तु तानि तद्वचनाद्विरुध्यन्त एव। तद्यथा अग्निः कस्मादग्रणीर्भवतीत्यादि। अग्रणी सर्वोत्तमः। अग्रं सर्वोत्तमं नयतीत्यनेन परमेश्वरस्यैव ग्रहणं भवितुमर्हति नान्यस्य।"[4]

यजुर्वेद भाष्य— यजुर्वेदका भाष्य स्वामीजीने पौष शुक्ला १३ संवत् १९३४ को आरम्भ किया।[5] इसे पूरा करनेमें उन्हें लगभग ५ वर्ष लगे। इसका समाप्ति काल मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिप्रदा संवत् १९३९ है। भाष्यके प्रारम्भमें निम्न मंगलाचरण उपलब्ध होता है–

> यो जीवेषु दधाति सर्वसुकृतज्ञानं गुणैरीश्वर-
> स्तं नत्वा क्रियते परोपकृतये सद्यः सुबोधाय च।
> ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुर्वरं
> भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया॥

यजुर्वेद भाष्यका भी मूल संस्कृत भाग ही स्वामीजी द्वारा विरचित है, उसका हिन्दी भाषानुवाद पण्डितोंसे

---

३ वेदाङ्काङ्कविधुयुतसरे मार्गशीर्षेऽङ्गभौमे।
ऋग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम्॥

४ ऋग्वेद भाष्य १।१।१

५ भाष्यारम्भका द्वितीय श्लोक।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कराया गया है। वह कई स्थानोंपर मूलसे सर्वथा प्रतिकूल और कहीं कहीं अस्तव्यस्त सा हो गया है। यजुर्वेद भाष्यके प्रथम १० अध्यायोंपर पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासुने एक विवरण लिखा था जो रामलाल कपूर ट्रस्टसे प्रकाशित हुआ है। इसे विवरणकारने भाष्यका हस्तलेखोंसे मिलान कर तथा यत्र तत्र व्याकरण विषयक आवश्यक टिप्पणियाँ देकर अत्यन्त उपयोगी बना दिया है। प्रारम्भमें एक विस्तृत, ज्ञानवर्धन, भूमिका भी जोड दी गई है। यजुर्वेद भाष्यका संस्कृतका उदाहरण– " ईश्वरेण सर्वमनुष्यैरनुष्ठेयोऽयं धर्म उपदिश्यते। योऽन्यायपक्षपातरहितः सुपरीक्षितः सत्यलक्षणान्वितः सर्वहिताय वर्तमानऐहिकपारमार्थिकसुखहेतुरस्ति, स एव सर्वमनुष्यैः सदाचरणीयः। "[६] यजुर्वेद भाष्यके कतिपय अंश पंजाब विश्वविद्यालयकी शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें रक्खे गये हैं।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका— भाष्य रचनासे पूर्व वेद विषयक समस्याओं पर अपने विचार प्रकट करने तथा वेदार्थ विषयक अपने दृष्टिकोणको समझानेके लिये स्वामीजीने इस ग्रन्थकी रचना की। इसे लिखते समय उनके समक्ष सायण रचित वेदभाष्य भूमिकाओंका आदर्श था। यह ग्रन्थ भी मूल रूपमें संस्कृतमें ही लिखा गया है और इसका भाषानुवाद पण्डितों द्वारा किया गया है। वह कहीं कहीं मूलसे प्रतिकूल है। भूमिकाके प्रारम्भमें निम्न मंगलाचरण श्लोक हैं—

ब्रह्मानन्दमनादि विश्वकृदजं सत्यं परं शाश्वतं।
विद्या यस्य सनातनी निगमभृद्वैधर्म्यविध्वंसिनी॥
वेदाख्या विमला हिता हि जगते नृभ्यः सुभाग्यप्रदा
तन्नत्वा निगमार्थभाष्यमतिना भाष्यं तु तन्तन्यते॥

भाष्यरचना विषयक अपने प्रयोजनको बताते हुए लेखक लिखता है—

मनुष्येभ्यो हितायैव सत्यार्थं सत्यमानतः।
ईश्वरानुग्रहेणेदं वेदभाष्यं विधीयते॥

मनुष्योंके हितके लिये और सत्यार्थके प्रकाशनके लिये ईश्वरके अनुग्रहसे मैं यह वेदभाष्य करता हूँ।

संस्कृतप्राकृताभ्यां यद्भाषाभ्यामन्वितं शुभम्।
मन्त्रार्थवर्णने चात्र क्रियते कामधुङ्मया॥

यह वेदभाष्य संस्कृत और प्राकृत (हिन्दी) इन दोनों भाषाओंमें किया जायगा।

वेदभाष्यकी सनातन आर्षप्रणालीको स्वीकार किये जानेकी घोषणा करते हुए स्वामीजी लिखते हैं—

आर्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीति सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते तु नान्यथा॥

अन्य वेददूषक टीकाओं और भाष्योंके दोषोंका निवारण भी इस भाष्यसे होगा, यह विश्वास भी प्रकट किया गया है–

येनाधुकभाष्यैर्ये टीकाभिर्वेददूषकाः।
दोषाः सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थविवर्णनाः॥

अन्तमें ईश्वरकी सहायतासे इस वेदार्थ विषयक महत् कार्यकी सिद्धिकी कामना व्यक्त करते हुए कहा गया है—

सत्यार्थश्च प्रकाश्येत वेदानां यः सनातनः।
ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम्॥

भूमिकामें वेदोत्पत्ति, वेदानां नित्यत्वविचार, वेदविषयविचार, वेदसंज्ञाविचार, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय, अधिकार निरूपण, भाष्यकरणशंकासमाधानादि लगभग ४० विषयोंका आलोचनात्मक तथा युक्तिपूर्ण विवेचन हुआ है। वेदविषयक मध्यकालीन पौराणिक भाष्यकारों तथा आधुनिक वेद विपश्चितोंकी धारणाओंका प्रसंगानुपात्त खण्डन भी किया गया है। भूमिकामें प्रयुक्त संस्कृत सर्वत्र प्रसाद गुण युक्त, सरल तथा परिमार्जित है। इस ग्रन्थमें पूर्वपक्ष सिद्धान्तपक्ष पूर्व शंकासमाधानकी प्राचीन शैली अपनाई गई है। उदाहरण द्रष्टव्य है– " अथ कोऽयं वेदो नाम? मन्त्रभागसंहितेत्याह। किञ्च 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्' इति कात्यायनोक्तेर्ब्राह्मणभागस्यापि वेद संज्ञा कुतो न स्वीक्रियत इति? मैवं वाच्यं। न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञाभवितुमर्हति। कुतः, पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वेदव्याख्यानादृषिभिरुक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वात्कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वान्मनुष्यबुद्धि रचितत्वाच्चेति। "[७]

६ यजुर्वेद भाष्य १.५
७ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका– वेदसंज्ञाविचार।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेद विषयक जिस क्रान्तिकारी दृष्टिकोणका प्रतिपादन स्वामी दयानन्दने अपनी इस भूमिकामें किया था, उसका विरोध किया जाना भी स्वभाविक था। इसके अनेक प्रकरणों पर यदा कदा शंकायें उठाई गईं। सर्वप्रथम प्रयाग निवासी किसी राम मोहन शर्मा नामक व्यक्तिने 'महामोह विद्रावण' नामक एक पुस्तक लिखकर 'भूमिका' के वेद संज्ञा विचार प्रकरणका खण्डन किया। इस पुस्तककी शैली अत्यन्त शब्दाडम्बरयुक्त अतः क्लिष्ट प्रकारकी थी, जिसमें यत्र तत्र बाणकी शैलीका अनुसरण करनेकी चेष्टा की गई थी। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

"अथैकदा पवित्रतमायां सुलभसुभगगांगप्रवाहायां वाराणस्यां विज्ञैरज्ञैः सर्वैरपि धर्मध्वजशिरोमणिः पुण्यजनप्रवर इति समधिगतः पंकबहुलाल्पजलात्पल्वलात् सद्यः काश्यादिपुण्यतीर्थभुवो दारयन्निव कश्चिद् भिक्षुवेषो देवनिन्दाघोरशब्दघुरघुरायितमुखः कलंकयन्निव स्ववेषं, प्लावयन्निवाज्ञानाम्भसि जगदशेषं, संजनयन्निव सतां चेतसः क्लेशं, वंचयन्निव स्वदेशं वस्तुतः स्वात्मानमेव वंचयन् कलुषयंश्च समुपागमत्।"[८] स्वामीजीके शिष्य पं. भीमसेन शर्माने अपने आर्य सिद्धान्त मासिक पत्रके प्रारम्भिक अंकोंमें इस पुस्तकका उत्तर विस्तारपूर्वक दिया।

सं. १९७७ विक्रमीमें आगरा निवासी किन्हीं पं. घनश्यामने भी संस्कृतमें 'भूमिकाभास' या 'भूमिकाधिक्कार' नामक पुस्तक लिखकर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाकी भाषा तथा विषयपर आक्षेप किये। जिस समय यह पुस्तक प्रकाशित हुई उस समय इसकी पर्याप्त चर्चा रही। इसके उत्तरमें गुरुकुल वृन्दावनके प्रतिष्ठित स्नातक पं. द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री सिद्धान्त शिरोमणिने संस्कृतमें ही 'भूमिकाप्रकाश' नामक ग्रन्थ लिखकर पं. घनश्याम द्वारा किये गये आक्षेपोंका निराकरण किया। 'भूमिका प्रकाश' की शैली व्यंगपूर्ण है। स्वामी दयानन्दके भूमिकामें उल्लिखित वेद विषयक विचारोंकी पुष्टिमें लेखकने कुछ भी नहीं उठा रक्खा है। पुस्तककी भाषाका नमूना निम्न उदाहरणसे ज्ञात होता है— "क्व खलु मानसराजहंसः ? क्व च पुनर्वराकः काकः। क्व विद्वत्कुलावतंसः परमहंसो महर्षिः क्व चोद्दण्डमण्डलललामो घनश्यामः ? अथवाऽद्यत्वे किमु नाम न सम्भाव्यम्।"[९]

इसी प्रकार महन्त ब्रह्मकुशलोदासने 'ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दु' के नामसे एक पुस्तक १८९१ में प्रकाशित कराई। इसमें भी ब्राह्मणग्रन्थोंका वेदत्व सिद्ध किया गया है तथा स्वामी दयानन्द प्रतिपादित संहिता प्रमाणवादका खण्डन करनेकी चेष्टा की गई है। इसका उत्तर भी "ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपराग' के नामसे संस्कृतमें ही दिया गया था। यह पुस्तक स्वामी प्रेस, मेरठसे छपी थी। वस्तुतः ऋग्वेदादिभाष्य भूमिकामें ऐसे अनेक विषय निरूपित किये गये थे जिनके विषयमें वादविवादकी पर्याप्त सम्भावना थी। वेदोंके विषयमें परम्परागत सनातनी दृष्टिकोण तथा स्वामी दयानन्दके दृष्टिकोणमें अन्तर था। यहाँ इस विषयका विस्तृत विवेचन करना प्रसंगोपात्त न होनेके कारण इतना ही लिखना पर्याप्त है कि भूमिकामें व्याख्यान मन्तव्योंने वेदविषयक आलोचनामें एक नवीन क्रान्तिका सूत्रपात किया। वेदोत्पत्ति वेदसंज्ञाविषय, वेदके अध्ययनका अधिकार आदि विवादास्पद विषयों पर दोनों पक्षोंकी ओरसे पर्याप्त ऊहापोह किया गया। इसी प्रकारका एक विचार विक्रम संवत् १९५५ के लगभग हुआ। शाहपुराके राजा श्री नाहरसिंह वर्मा तथा करौली नरेश भंवरपालदेवके राजपण्डितोंके बीच वेदसंज्ञा निर्णय विषयक लिखित शास्त्रार्थ पत्रव्यवहारके रूपमें हुआ था। दोनों पक्षोंके पण्डितों—यमुनादत्त शर्मा तथा चन्द्रशेखर शर्माके मध्यका यह लिखित शास्त्रार्थ संस्कृतभाषामें 'वेदनिर्णय' के नामसे १९५६ वि. में प्रकाशित हुआ है। दोनों ओरसे पांच पांच पत्र लिखे गये। संस्कृतभाषाके माध्यमसे हुआ यह शास्त्रार्थ अतीव मनोरञ्जक तथा ज्ञानवर्धक है। पत्रकी भाषा द्रष्टव्य है— "यत्तु भवद्भिर्भगवतः पाणिनेः सूत्राणि प्रमाणे दत्तानि तैरेव स्पष्टं प्रतीयते वेदातिरिक्तान्येव ब्राह्मणानीति तद्यथा 'छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणीति' सूत्रे यदि ब्राह्मणमपि वेदश्चेत् द्वयोर्ग्रहणं न भवेत्। छन्दसा

८ आर्यसमाजका इतिहास— प्रथम भाग, लेखक इन्द्र विद्यावाचस्पति पृष्ठ १९१ पर उद्धृत।

९ भूमिकाप्रकाशः पृ. १४९ प्रकाशक— राजेन्द्रनाथ वैद्यभूषण, बम्बई १९८१ वि.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मणस्य ब्राह्मणेन च छन्दसो ग्रहणे सिद्धे पुनरेकस्मिन्नेव सूत्रे किमर्थं द्वयोर्नाम। "१०

वस्तुतः ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका आर्यसमाजके इतिहासमें अपना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रो. मैक्समूलरने संस्कृत साहित्यके इतिहासका विवेचन करते हुये लिखा था कि "ऋग्वेद कालसे प्रारम्भ करके दयानन्द द्वारा रचित ऋग्वेदकी भूमिका लिखे जानेके समयतकके साहित्यको हम दो भागोंमें बांट सकते हैं। यहाँ यह बात बता देना भी समुचित ही होगा कि दयानन्द द्वारा लिखी गई ऋग्वेदकी भूमिका भी कम रुचिपूर्ण नहीं है।[११] भूमिकाकी रचना भाद्रपद शुक्ल प्रतिपदा सं. १९३३ आदित्यवारको प्रारम्भ हुई यह प्रारम्भके इस श्लोकसे ज्ञात होता है—

कालरामांकचन्द्रेऽब्दे भाद्रमासे सिते दले।
प्रतिपदादित्यवारे च भाष्यारम्भः कृतो मया॥

---

१० वेदनिर्णय पृ. ५, हितचिंतक यंत्रालय काशीमें मुद्रित सं. १९५६।

11 We may divide the whole of Sanskrit literature beginning with the Rigveda, and ending with Dayanand's Introduction to his edition of Rigveda, his by no means uninteresting Rigveda Bhumika in two great periods. (India, what can it teach us? By prof. F. Maxmuller.)

दैवत-संहिता

सम्पादक— म. म. पं. श्री. दा. सातवलेकर

वेदोंमें पूजक ऋषियोंकी अपेक्षा पूजनीय देवोंकी प्रधानता है। क्योंकि उपासककी अपेक्षा उपास्यकी मुख्यता सर्वत्र होती है। उपासक उपास्यके गुणोंको अपने अन्दर लाकर तद्वत् बनना चाहता है। वेदोंमें भी ऋषि उपासक हैं और देवता उपास्य। ऋषिगण अल्पगुणान्वित हैं और देवता सर्वगुणान्वित। ऋषिगण देवताओंके गुण अपने अन्दर धारण करना चाहते हैं और देवसदृश बनना चाहते हैं। इस प्रकार देवोंका स्थान मुख्य है।

ये देवता संस्थामें अनेक हैं, पर उनके मन्त्र चारों वेदोंमें बिखरे पडे हैं। अग्निके कुछ मन्त्र ऋग्वेदके १ मण्डलके १ सूक्तमें आए हैं, तो कुछ मन्त्र उसके २४ वें सूक्तमें आए हैं। इसी प्रकार इन्द्रादि देवोंके मन्त्रोंकी भी अवस्था है।

इस संहितामें देवताओंके अनुसार चारों वेदोंका मन्त्रसंग्रह है। इन्द्रके चारों वेदोंमें जितने मन्त्र आए हैं, उन सबका एक जगह संग्रह कर दिया है। इसी प्रकार अन्य देवोंका भी किया है। इससे वेदका अध्ययन करनेवालोंको बडी सुविधा होगी। उन्हें चारों वेदोंको खरीदनेकी कोई आवश्यकता नहीं। १७ पृष्ठोंमें उत्कृष्ट भूमिका युक्त आकर्षक छपाई, आकर्षक जिल्द। डबलक्राउन ८ पेजी साइज, भूमिका १७ पृष्ठ, १०४८ पृष्ठ मूल्य ३०) (डा. व्य. पृथक्)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो. 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी, [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक युवकके स्वप्न

मूल प्रणेता— नेताश्री सुभाषचन्द्र बोस] [अनुवादक— श्रीकृष्णदत्त, साहित्यरत्न

मानव जीवनमें, शैशव, यौवन एवं जरा यह कई अवस्थान हैं। इसी प्रकार किसी राष्ट्रके जीवनमें भी अवस्थानोंका यही क्रम है। मनुष्यकी मृत्यु होनेपर भौतिकरूपेण उसका नवीन रूपांतर होता है। एक राष्ट्रकी भी मृत्यु होती है और मरनेके उपरान्त वह नवजीवन प्राप्त करता है। किन्तु एक राष्ट्र एवं व्यक्तिमें एक अन्तर है। सभी राष्ट्रोंको अनिवार्यतः पुनर्जीवन प्राप्त नहीं होता है, एक राष्ट्र जिसके जीवनके सभी उपादान समाप्त हो गये हों, जिसकी शक्तिका ह्रास हो चुका हो, भूतलसे अशेषेण लुप्त हो जायेगा अथवा उसका अस्तित्व एक ऐसा अभिशापमय कटू अस्तित्व होगा जो एक रेंगनेवाले कृमिका होता है जो किसी भी समय पांवसे रौंदा जा सकता है। इतिहासके पृष्ठोंपर पर उसका लेश मात्र भी अस्तित्व नहीं होता।

भारतीय राष्ट्रकी एकसे अधिक बार मृत्यु हुई, किन्तु इसे प्रत्येक बार नवजीवन प्राप्त हुआ। इसका कारण यह है कि भारतीय अस्तित्वके लिये औचित्य था। भारतने विश्वको एक संदेश देना है। भारतीय संस्कृतिमें एक ऐसा तत्त्व है जिसका मानवता परिहार नहीं कर सकती। इस तत्त्वके बिना मानव सभ्यताका चरम विकास अपरिज्ञेय है। विज्ञान, कला, साहित्य, व्यापार तथा वाणिज्यके क्षेत्रमें हमारे राष्ट्रके पास विश्वको देनेको है। अतः यही कारण है कि अंधकारको दूर करनेके लिये भारतीय मनीषियोंने ज्ञानज्योतिको युग-युगोंतक प्रज्ज्वलित रखा। उनके वंशज होते हुये हम अपने महाराष्ट्रके उस उच्च आदर्शको पूर्ण किये बिना कैसे मर सकते हैं?

मानव शरीर धूलमें मिल सकता है, किन्तु उसकी आत्मा तो अमर्त्य है। यही बात, एक राष्ट्रके विषयमें भी सत्य है। एक राष्ट्रकी मृत्यु भले ही हो जाये, किन्तु उसकी आत्मा, उसकी सभ्यता, संस्कृति और परम्पराके रूपमें जीवित रहती है। जब राष्ट्रकी सृजन प्रतिभा नष्ट हो जाती है तो निश्चित रूपेण उसकी मृत्यु सन्निकट होती है। उसके निवासियोंको खाने, सोने और प्रजननके अतिरिक्त किसी बातका पता नहीं होता। उनका उद्देश्य रूढियोंका यंत्रवत् अनुसरण करना हो जाता है। यदि कुछ औचित्य हो तो इस प्रकारकी स्थितिमें भी राष्ट्र येनकेन प्रकारेण जीवित रह सकता है। यदि राष्ट्र अपकर्षोन्मुखी हो तो वह किसी भी प्रकार अपनी सभ्यता, संस्कृति और परम्पराको सुरक्षित रखकर अपनी विशिष्टताको भी अन्यराष्ट्रोंके सम्पर्कमें आकर सुरक्षित रखता है। इसके अनन्तर आता है पुनरावर्तनका काल, भाग्य परिवर्तनके रूपमें अथवा दैवी प्रेरणासे। अन्धकारका आवरण धीरे धीरे हट जाता है, सुप्त राष्ट्र जागता है, और अपनी सृजन प्रतिभाकी पुनरुपलब्धि उसे होती है। राष्ट्रका जीवन अपने पूर्ण सौन्दर्य सहित सहस्र पंखुडीवाले कमलकी भांति खिल उठता है एवं विभिन्न दिशाओंमें अपने परागको फैला कर सत्य एवं सौन्दर्यके विविध रूपोंमें व्यक्त होता है। भारतकी मृत्यु अनेक बार हुई और अनेक बार उसका पुनर्जन्म हुआ, क्योंकि विश्वमें उसकी एक असाधारणतः महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

भारतके पुत्र और पुत्रियोंमें वास्तवमें उन्हींका जीवन सार्थक है जिनका इस भूमिकामें अडिग विश्वास है। जब मैंने कई मास भारतसे दूर कारागारमें व्यतीत किये तो अनेक बार मैंने अपनेसे पूछा, "वह क्या वस्तु है जो निरन्तर कारागारमें बन्द रहनेपर हमारी आत्माको विदीर्ण करनेके स्थान पर उसे स्थिर ही नहीं रखती, प्रत्युत् उसे नवीन प्रदान करती है?" मेरे अंतरसे प्राप्त होनेवाला उत्तर यह था, 'भारतका अपना एक उद्देश्य है, उसका भविष्य भव्य है, हम एक महान् परम्पराके उत्तराधिकारी हैं। एक नये स्वतन्त्र भारतके इतिहासके हम निर्माता हैं। इसी विश्वास द्वारा प्राप्त शक्ति हमारा जीवन सम्बल है। और इसीके सहारे हम शुष्क अतीतकी उपेक्षा कर सब प्रकारकी यंत्रणायें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सह सकते हैं। सभी कठिनाइयां हमारे आदर्शकी सुहावनी धूपके आगे पिघल जायेंगी। इस महान् आदर्शके प्रति अपनी आस्थाके आधारपर ही भारतीय युवक मृत्युकी अवहेलना कर सकता है।

इस प्रकारके विश्वास, आदर्शसे प्रेरित व्यक्ति ही उस सृजन क्षमतासे अभिनिविष्ट हो सकता है जिससे वह उचित रूपमें राष्ट्रकी सेवा कर सकता है। संसारकी सभी उपलब्धियोंका रहस्य मानवका अपनी प्रतिपत्तिमें विश्वास एवं उसके वहनके लिये अपेक्षित क्षमतामें ही निहित है। इस प्रकारके विश्वाससे हीन व्यक्ति या तो स्वयं या उसका राष्ट्र कुछ भी निर्माण करनेमें अशक्त है।

हममेंसे अनेक व्यक्तियोंकी यह धारणा है कि कष्ट सहना स्वतः एक बुराई है। यह केवल एक कटु अनुभव है। किन्तु यह सत्य नहीं। जहां कष्टमें दर्द है, वहां दूसरी ओर वह असीम प्रसन्नताका भी स्रोत है। यदि इस प्रसन्नताको मनुष्य अनुभव नहीं कर पाता तो कष्ट सहनेकी गरिमा लुप्त हो जाती है, वह मात्र निम्नस्तरीय यंत्रणा ही रह जाती है। उस मनुष्यके लिये जिसने इस आनन्दका आस्वादन किया हो, कष्ट एक उदात्त और प्रेरक वस्तु बन जाती है जो उसके हृदयको विदीर्ण करनेके स्थान पर और अधिक प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करती है। कोई प्रश्न कर सकता है, "इस आनन्दका स्रोत कहां है ?"

एक मेघाच्छादित और अन्धकारमयी रात्रिमें गगनमें चमकनेवाली बिजलीका क्या स्रोत है ?" मेरा मत है कि किसी महान् आदर्शके प्रति एक मनुष्यकी आस्था ही वह स्रोत है जिससे आनन्द निस्सृत होता है। किसी आदर्शके लिये यंत्रणायें सहन करनेवाला व्यक्ति कदापि उसे निष्फल नहीं मानता। इसके विपरीत उसका कष्ट आनन्दमें परिणत हो जाता है और एक नवीन शक्ति उसकी धमनियोंमें संचारित होने लगती है। आपके समक्ष जीवनकी वास्तविक उपादेयता तभी अनावृत होगी जब आप एक उद्देश्यके लिये आत्मोत्सर्ग करेंगे। इसी समय उसका गुप्त कोष आपके सामने प्रत्यक्ष होगा।

इन्सीन (Incein) जेलमें गत अप्रैलमें मैं एक रूसी उपन्यासका अध्ययन कर रहा था उसमें इन्हीं भावनाओंकी मुझे प्रतिध्वनि प्राप्त हुई। रशियन जनतासे नायकके मुखसे लेखकने यह स्मरणीय पंक्तियां कहलवाई हैं— "अभी जनताके सामने कष्टकी सुदीर्घ अवधि है। लोभके हाथों अभी उसका शोषण होगा। उसे और रक्त बहाना होगा। किन्तु अपने उस उद्देश्यके लिये जो मेरे हृदयका स्पन्दन है, जिसका मेरे मस्तिष्क पर आधिपत्य है और जो मेरी अस्थियोंमें मज्जारूपमें है, मैं पहले ही अपने त्यागके द्वारा उस नक्षत्रके समान समृद्ध हूं जो अपनी स्वर्णिम किरणें विकीर्ण कर समृद्ध बनता हैं। मैं सब कुछ सहूंगा, सारे कष्ट भोगूंगा, क्योंकि चिर सुरक्षित है मेरे हृदयमें आनन्दका वह कोष, जिसका कोई ह्रास नहीं कर सकता। मेरे इसी आनन्दमें शक्तिका संसार निहित है।"

नीलकंठ (भगवान् शिव) के उदाहरणसे प्रेरित होकर, एक व्यक्तिको कहना चाहिये, "मेरे भीतर आनन्दका फव्वारा छूट रहा है। अतः मैं सभीके कष्ट और विषादको अपना सकता हूं, क्योंकि इसीसे मुझे सन्मार्गकी दिशाका ज्ञान होगा।" ऐसे ही व्यक्तिको जीवनमें चरम लक्ष्यकी प्राप्ति हो सकती है।

अपने आदर्शके प्राप्त्यर्थ हमें महत्तम प्रयत्न करने पड़ेंगे। जिन्हें नवभारतका निर्माण अभिप्रेत है, उन्हें अपना सर्वस्व इस लक्ष्यको समर्पित करना होगा। उनका जीवन असीम त्यागकी विस्तृत कथा हो। उन्हें पूर्ण दरिद्र बनना होगा, एवं अपनी साधनाके प्रतिकार स्वरूप कुछ नहीं मांगना होगा। अपने राष्ट्रको नवजीवन प्रदान करनेके लिये उन्हें अपने जीवनकी आहुति देनी होगी। निर्माणके इस महान् आदर्शके लिए अपनेको समर्पित करनेवालोंमें आस्था और आदर्शवाद हो और इससे भी आवश्यक यह है कि उनकी क्रियामें उस उत्साहका पुट हो जो प्रसन्नतासे संपुटित हो।

कुछ दिन पूर्व मुझे अपने एक विद्यार्थी मित्रसे मिलनेका अवसर मिला जिसने मुझसे कुछ ऐसे प्रश्न पूछे जिनके द्वारा उसकी नैराश्य एवं अविश्वासकी भावनाका परिचय मिलता था। उसके प्रश्नोंसे संकेत मिलता था कि उसकी दृष्टिसे हमारा पक्ष एकदम आशाविहीन है एवं हमारे राष्ट्रका उत्थान नहीं हो सकता। मुझसे अपने कुछ प्रश्नोंका उत्तर प्राप्त करनेके पश्चात् उसने मुझसे पूछा, "परिषदोंमें प्रवेश करनेसे क्या लाभ है ? शासनसे संघर्ष करते समय मन्त्रिमण्डलोंको पदच्युत करनेसे हमारे कौनसे लक्ष्यकी सिद्धि होगी ?" मैंने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरमें यह प्रश्न पूछा, "ऐसा न करनेसे क्या लाभ है हमें, जरा बताओगे ?" उस समय उसमें विश्वास और उत्साहका अभाव देखते हुये मैंने उसे समझाया, "देखो, तुम मुझसे बहुत छोटे हो। तुम्हारे आदर्शवादका समयके साथ परिपाक हुआ है। इसके विपरीत जहांतक तुम्हारा सम्बन्ध है, वह उत्तरोत्तर क्षीण होता गया है।" अन्तमें उस युवकको यह स्वीकार करना पडा कि पर्याप्त समयतक अनेक यंत्रणायें सहन करने एवं कठिनाइयोंसे गुजरनेका ही यह परिणाम था कि उससे दृष्टिकोणमें परिवर्तन आ गया था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बंगालके सार्वजनिक जीवनमें पिछले दो वर्षसे विश्वास एवं आदर्शवादका दुर्भाग्यपूर्ण अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। किसी सीमातक इसने हमारी सार्वजनिक क्रियाओंको पंगु बना दिया है। अब समय आ गया है अब हमें दुर्बलताकी भावना त्यागनी होगी। जो भीतरसे ही तुम्हारी शक्तिको क्षीण करे, उससे बडा और कोई तुम्हारा शत्रु नहीं। अपने बाह्य शत्रुओंको विजित करनेसे पूर्व हमें अपनी कार्यक्षमताके प्रति अविश्वासकी भावनाको पराभूत करना होगा। यदि हम अपने लक्ष्यके प्रति अपने विश्वासको सबल बना सकें, यदि हमारा भारतके भव्य-भविष्यको निर्मित करनेमें अपने सामर्थ्यके प्रति दृढ विश्वास हो तो हम सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

आधुनिक भारतीय सार्वजनिक जीवनकी दो विशेषतायें ऐसी हैं जो एक व्यक्तिमें आशाका संचार कर सकती हैं। प्रथमतः शारीरिक विकासके लिये प्रेम, विश्वभ्रमणके प्रति उत्साह। दूसरी विशेषता है हमारे युवकोंमें नवजागरण। जहांतक बंगालका प्रश्न है, समय था जब बंगालियोंको कायर माना जाता था। अब वह कलंक हमने धो डाला है। इस प्रकारकी अपमानजनक बात कहनेका आज कोई दुस्साहस नहीं कर सकता। किन्तु बंगालियों पर एक लांछन और भी लगाया जाता है और वह है उनकी शारीरिक दुर्बलता। बंगालियोंको अपनी इस दुर्बलताको भी दूर करना है। मैंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सभी जगहों पर व्यायाम केन्द्रोंकी संख्यामें वृद्धिको देखा है और बंगाली इस लांछनको भी धो डालनेके लिये कृत-संकल्प प्रतीत होते हैं। शारीरिक शक्तिके विकासका यह क्रम राष्ट्रव्यापी स्तर पर होना चाहिये जिससे कि इस दृष्टिसे समस्त राष्ट्रमें स्वस्थ परिवर्तन आ जाये। केवल मात्र कुछ मुट्ठीभर कोटिके पहलवानोंके निर्माणसे राष्ट्रका कार्यसिद्ध नहीं हो सकेगा। कतिपय पहलवानोंकी साहसपूर्ण निष्पत्तियोंसे देशका गौरव अवश्य बढता है, किन्तु एक साधारण बंगालीकी शक्तिमें इससे वृद्धि नहीं होती। एक राष्ट्रके विषयमें सम्मति देते समय मात्र उसके सर्वोत्तम प्रतिनिधि ही अवधानानुगत नहीं होते, प्रत्युत् साधारण व्यक्तिको भी ध्यानमें रखना पडता है।

×

भारतीय युवकोंमें विश्वभ्रमणके प्रति जाग्रत रुचि असंशयेन सर्वाधिक उत्साहवर्धक लक्षण है। केवल बीस वर्ष पूर्व विश्वके विभिन्न क्षेत्रोंमें पैदल अथवा साइकिलों पर घूमते हुये हमारे भारतीय युवकोंके चित्रको कोई कल्पनामें भी स्थान नहीं दे सकता था। अज्ञात प्रदेशों, अज्ञात मार्गों एवं अपरिचित व्यक्तियोंको परिचयकी परिधिमें लानेकी इच्छामें ही निहित है वह रहस्य जो महान् राष्ट्रों एवं साम्राज्योंके निर्माणमें निर्णायक तत्त्व है। अपनी संकीर्ण परिधिसे बाहर जानेके प्रति जो अनिच्छुक राष्ट्र होते हैं, उनकी मृत्यु निःसंदेह हो जाती है। इसके विपरीत जिस देशके लोग सभी बाधाओंकी उपेक्षा कर देते हैं और विदेशोंमें पर्यटन करनेकी अपनी इच्छामें मृत्युकी भी अवज्ञा कर डालते हैं, वही शारीरिक एवं मानसिक दृष्टिसे उन्नत हो सकते हैं। वही अपने साम्राज्यकी सीमाओंका विस्तार कर सकते हैं। कवि द्विजेन्द्रलालने यह कह कर "मैं इसी देशमें उत्पन्न हुआ हूं और इसीमें मरना चाहता हूं" कोई अति उदात्त विचार हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं किया है। अब समय आ गया है अब हमें इसके स्थान पर यह कहना चाहिये।

"मैं किसी भी मूल्य पर घर नहीं जाऊंगा। बाह्य संसारके सम्मोहनमें बद्ध होकर मैं तो दीवाना हो गया हूं।" हमें अपने घरके सुखद छायाके छत्रोंको छोडना होगा। हमें प्रथमतः अपने ही देशका सूक्ष्म अध्ययन करना होगा। फिर हमें एक देशसे दूसरे देशको जाना होगा। अज्ञात प्रदेशोंकी खोजमें हमें सामुद्रिक विस्तारको नापना होगा। इस प्रकारकी प्रतिपत्तिका वरण करनेवाला राष्ट्र साहसमें अभिवृद्धि करेगा, चरित्र, ज्ञान एवं अनुभवके बलको भी वह प्राप्त करेगा। इसके साथ ही अतिरिक्त लाभ उसे व्यापारिक वृत्तियोंमें समुन्नति और साम्राज्योंकी स्थापनाके रूपमें होगा। भ्रमणप्रियता ही अंग्रेज जातिके अद्भुत उत्थान और उसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशाल साम्राज्य स्थापनका उपादान कारण है। यद्यपि साम्राज्य स्थापनके प्रति हमारी उपेक्षा सर्वविदित है, तथापि यह बात असंदिग्ध है कि विदेश पर्यटनसे हमारे दृष्टिकोणमें व्यापकता आयेगी और हमारे ज्ञान, अनुभव, शक्ति और आत्म विश्वासमें इससे अभिलषित वृद्धि होगी।

इस युगमें दर्शनीय एक अन्य शुभ लक्षण हमारे युवक वर्गकी जागृति है। अविश्रान्तिकी यही भावना जीवनका चिह्न है। यही कारण है कि हम आजकल सभी स्थानों पर युवक सम्मेलनोंके विषयमें सुनते हैं। कहा जाता है कि युवक कार्य करनेके लिये उद्यत हैं किन्तु उन्हें उचित मार्ग दर्शनकी अपेक्षा है। कतिपय व्यक्तियोंकी धारणा है कि युवक समुचित नेतृत्वके अभावमें कुछ भी करनेमें अशक्त हैं।

मेरे लिये इतना ही पर्याप्त है कि युवक अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वोंके प्रति जागरूक हैं। भावी कार्यक्रमके विषयमें यदि कोई संभ्रम हो और नेतृत्व प्राप्त न हो तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि हम किसी कार्यको त्याग दें। मैं विरोधी सम्मति रखनेवालोंसे पूछता हूं, " कल्पना कीजिये, आपको कोई नेता नहीं मिलता तो क्या आप निष्क्रिय बैठ जायेंगे? स्वयं अपने वर्गमेंसे कोई नेता उत्पन्न कर आगे क्यों न बढा जाये? " नेता आकाशसे नहीं टपकते। उनका निर्माण तो कार्यमें प्रगति होनेसे स्वतः हो जाता है। केवल इस बहानेसे कि तुम्हें किसीका नेतृत्व प्राप्त नहीं है, निरुद्यमी होकर बैठनेसे काम नहीं चलेगा। अपने ज्ञानके आलोकमें अपना मार्ग निर्दिष्ट करो। यह समस्या इतनी जटिल नहीं है जितनी दीखती है। हमारा उद्देश्य है एक ऐसे राष्ट्रका निर्माण जो अपनी निष्पत्तियों, ज्ञान, शिक्षा एवं नैतिकताकी अपेक्षासे विश्वके सर्वाधिक समुन्नत राष्ट्रोंमें परिगणित हो। अतः जिस वस्तुकी आवश्यकता है वह है राष्ट्रीय जीवनके प्रत्येक पक्षमें जागृति। प्रत्येकको अपनी क्षमता एवं अभिरुचिके अनुरूप राष्ट्र परके किसी भी प्रतिपत्तिका वरण करना होगा। प्रत्येकको हमें ईश्वर प्रदत्त गुणोंका अपनी शक्ति भर विकसित करनेका अवसर देना होगा। उसके उपरान्त ही वह राष्ट्रको अपनी इन विकसित शक्तियोंको समर्पित कर सकेगा। गत बीस वर्षोंमें भारतमें विज्ञान, साहित्य एवं राजनीतिके क्षेत्रमें कई उल्लेखनीय व्यक्ति दृष्टिगोचर हुये हैं। उनमेंसे अनेक जिन्होंने राष्ट्रकी मूल्यवान् सेवायें की हैं, अब दिवंगत हो चुके हैं। राष्ट्र आज भी उनके निधनसे शोकाकुल है एवं सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा उनके अभावकी पूर्ति अभी तक न हो पाना, असंशयेन हमारे लिये लज्जास्पद है। यदि किसी देशकी वीर उत्पन्न करनेकी क्षमता सुरक्षित है तो एक महान् व्यक्तिका स्थान शीघ्र ही किसी अन्य सुयोग्य व्यक्ति द्वारा ले लिया जाता है। भारत अपने भाग्यके स्वयं निर्माता होनेके लक्ष्यसे अभी दूर है, क्योंकि नवीन नेताओंका आविर्भाव बहुत धीमी गतिसे हो रहा है। एक सर्वतोमुखी विकासशील राष्ट्रके समग्र चित्रकी परिकल्पनाके बिना आप राष्ट्रवादकी स्वस्थ भावनाकी अभिव्यक्ति नहीं कर सकते। राष्ट्र जीवन एक व्यक्तिगत जीवनकी भांति सभी क्षेत्रोंमें आनुपूर्वी एवं सामंजस्यपूर्ण विकासकी अपेक्षा रखता है। यदि एक नवीन ओजमयी भावना राष्ट्रीय संस्थानमें संचरित होती है तो उसका उत्थान उतना ही शीघ्र होता है जितना वह निश्चित है।

युवा भारतको अपनी शक्तियों एवं सम्भावनाओंको सर्वप्रथम अनावृत करता है। हमारे युवकोंको स्वावलम्बनका पाठ पढना है। नवीन राष्ट्रका निर्माण एकान्ततः उन्हींका उत्तरदायित्व है। इस प्रकारके महान् राष्ट्रके लिये समग्र जीवनका समर्पण अपेक्षित है। एक आशाप्रद संकेत यह है कि हमारे युवक अपने उत्तरदायित्वोंसे अनुभिज्ञ नहीं हैं। यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित हो चुकी है। मेरे युवा बन्धुओ, आइये हम मातृभूमि की वेदि पर अपना जीवन बलिदान करनेके लिये समुद्यत हों। " करो या मरो " यही हमारा प्रेरणा मंत्र हो।

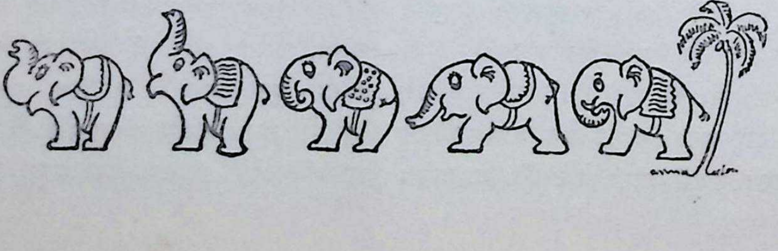

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रो. मेक्समूलरके वेदभाष्यका मूल उद्देश्य

(लेखक— डॉ. कृष्णवल्लभ पालीवाल)

आज अपने देशमें प्राच्यविद्या विशारद एवं संस्कृतज्ञ ही नहीं अपितु सामान्य नागरिक भी मैक्समूलरके नामसे परिचित हैं और कुछ उसे भारतका अत्यन्त हितैषी भी मानते हैं, कुछ यहां तक कहते नजर आते है कि जर्मन होते हुए भी उसने हमारे वेदादि शास्त्रोंका अंग्रेजीमें भाष्य करके बडा उपकार किया है। पाश्चात्य जगत्में आज जो भी वैदिक वाङ्मयका प्रचार है वह प्रो० मैक्समूलरकी सतत साधना एवं अगाध निष्ठाका परिणाम है। विदेशोंमें संस्कृत एवं वेदादि शास्त्रोंमें अध्ययनकी रुचि मैक्समूलरकी प्रेरणाका फल है, जब कि वस्तुतः पाश्चात्योंके इन धार्मिक पुस्तकोंके अध्ययनका मूल उद्देश्य कुछ और ही है।

निःसंदेह प्रो० फेड्रीक मैक्समूलरने वेदों, भाषा विज्ञान, संस्कृत साहित्य, भारतीय दर्शन एवं धर्मोंके तुलनात्मक अध्ययन पर विशाल साहित्यका सृजन किया है। वेदोंको मुद्रण करानेका श्रेय उनको है। इसके अतिरिक्त उन्होंने औक्सफौर्ड विश्व विद्यालय (१८४७-१९००) से 'पूर्वकी पवित्र पुस्तकें' ग्रंथ मालाके अन्तर्गत पच्चीस ग्रंथोंका सम्पादित करके पचास भागोंमें प्रकाशन कराया है। ये पुस्तकें वेद, उपनिषद्, गीता, वेदान्तसे लेकर जैन, बौद्ध, इस्लाम और चीनी धर्मसे सम्बन्धित हैं। आखिर इन धार्मिक ग्रंथोंपर इतने विशाल साहित्य सृजनमें प्रो० मैक्समूलकरका मूल उद्देश्य क्या था? क्या वे वेदोंकी सार्वभौमिक, सर्वकालिक एवं सार्वदेशिक शिक्षाओंसे पाश्चात्य जगत्को अवगत करना चाहते थे? या एक निष्पक्ष शोधकर्ताकी दृष्टिसे केवल उनका तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते थे? या इस सबके पीछे मूल भावना कुछ और ही थी? इन्हीं कुछ प्रश्नोंपर यहां संक्षेपमें विचार किया जायेगा।

इन प्रश्नोंका उत्तर प्रस्तुत करनेसे पहिले मैं आपका ध्यान भारतकी तत्कालीन आन्तरिक एवं राजनैतिक अवस्थाकी और आकर्षित करना चाहूँगा।

१९ वीं शताब्दीके प्रारंभमें इधर मेकाले अंग्रेजीमें शिक्षा द्वारा भारतीय नवयुवकोंको यहांकी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृतिसे दूर ले जानेका प्रयत्न कर रहा था तो उसके विपरीत भारतीय जनसमूह अंग्रेजीके विरुद्ध विद्रोहकी तैयारियां कर रहा था, जिसकी चिनगारियां १८५७ के स्वातंत्र्य संग्राममें प्रस्फुटित हुई, जिसे दबाना बडा मुश्किल हो रहा था। अतः मैकाले आदि शासकोंने सोचा कि इस क्रान्तिको केवल सैनिक शक्तिसे ही नहीं बल्कि तोड फोडकी नीतिसे भी दमन करना चाहिये 'विभाजन और शासन' की जो पुरानी रोमन नीति है, भारतके लिये वही हमारी भी होनी चाहिये। इसका प्रमाण ऐशियाटिक जनरल' (१८२१) ले. जनरल जॉन बुक (१८५७) औरलार्ड एल्फिंस्टन् (१८५९) आदिके लेखोंसे स्पष्ट मिलता है। धर्म और संस्कृतिके क्षेत्रमें इस नीतिको क्रियान्वित करनेके लिये लार्ड मैकाले एक ऐसे व्यक्तिकी तलाशमें था जिसका अंग्रेजी और संस्कृत दोनों ही भाषाओंपर समान अधिकार हो ताकि वह अपनी प्रवाहमयी लेखनीसे भारतीयोंके दिल और दिमागमें उनके धर्म और संस्कृतिके प्रति अश्रद्धा एवं हेय भावना पैदा कर सके। और भारतके दुर्भाग्य वश उसे ऐसे समयमें पैरिस विश्व विद्यालयके संस्कृत प्रोफेसर औगिन नरनौसे ऋग्वेदका अध्ययन करता हुआ ऐसा एक व्यक्ति मिल गया। वह था फ्रेडरिक मेक्समूलर, २८ दिसम्बर १८५५ की लार्ड मैकाले मेक्समूलर भेंट भारत विरोधी साहित्य सृजनके नींवकी तारीख थी, मैक्समूलरने स्वयंने स्वीकार किया कि मैकालेसे मिलनेसे पश्चात् वह अधिक गम्भीर हो गया।

(मैक्समूलरकी जीवनी और पत्र)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेक्समूलरको आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागमें एक पद दिया गया, वस्तुतः इस विश्वविद्यालयमें संस्कृत विभाग, भारतीय संस्कृत ग्रंथोंका अनुवाद करनेके लिये स्थापित किया गया था, ताकि भारतमें धर्मपरिवर्तनका कार्य सरलतापूर्वक चलाया जा सके। यहां संस्कृत प्रोफेसरके लिये बौडन-चैयर इसी उद्देश्यसे स्थापित की गई थी जिसके संस्थापक कर्नल बौडनकी १५ अगस्त सन् १८११ की यही इच्छा थी जिसे मोनीयर विलियमस्ने अपनी संस्कृत इंग्लिश शब्दकोषकी भूमिका में स्पष्ट व्यक्त किया है। यहां आकर मेक्समूलरने योजनाबद्ध कार्य प्रारंभ कर दिया। सर्वप्रथम उन्होंने ऋग्वेदका मुद्रण कराया, तत्पश्चात् उसका भाष्य सायणशैली पर प्रारंभ किया, परन्तु हम देखते हैं कि अनेकों मौलिक सिद्धान्तों पर मेक्समूलर सायणसे भिन्न हैं जैसे वेदोंका रचनाकाल वैदिक देवतावाद, हेनोथीयिज्म आदि जो बादमें असत्य सिद्ध हुये। मैक्समूलरकी वैदिक, वाङ्मयको नष्ट करने एवं उनमें भारतीयोंकी अश्रद्धा उत्पन्न करनेकी भावनाकी झलकियां उनके साहित्य, जीवनी एवं पत्रोंसे स्पष्ट होती है।

यदि हम प्रो० मेक्समूलरके साहित्यको गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करें तो हमें एक विचित्र विरोधाभास प्रगट होता है, एक तरफ वे भारतीय धर्मग्रंथों एवं वेदादि शास्त्रोंकी अगाध निष्ठासे प्रशंसा करते नजर आते हैं और विश्व इतिहास, भाषा विज्ञान एवं विकासकी प्रगतिमें इन ग्रंथोंका महत्त्वपूर्ण योग मानते है तो दूसरी तरफ बडी ही व्यंगात्मक भाषामें प्रहार करते हुए भी। भारतकी प्रशंसामें उन्होंने पर्याप्त लिखा है, उदाहरणार्थ दी वेदाजकी भूमिकामें लिखते हैं कि "यह विचार नहीं करना चाहिये कि ऋग्वेदके जर्मन, फ्रेंच और अंग्रेजीमें अनेकों भाष्य हुए हैं अतः हमने वेदोंकी समस्त शिक्षाओंको समझ लिया है, वस्तुतः इसके अलावा प्रत्येक भाष्यमें अनुवादके प्रस्ताविक विचार हैं। हम अभी वैदिक साहित्यकी ऊपरी सतह पर ही घूम रहे हैं।" यह उनकी वेदकी अन्तरात्माको समझनेकी जिज्ञासाको इस प्रकार व्यक्त करता है।

"मैं मानता हूं कि जो स्वयं अपना, अपने पूर्वजों और अपने इतिहासका अध्ययन करना चाहता है उसके लिये वेद आवश्यक है। आर्य जातिके अध्ययनके लिये वेदसे अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ अधिक नहीं है।" भारतीय संस्कृतिके अध्ययनके लिये वेद क्यों आवश्यक है—

इसका उत्तर उन्होंने 'इण्डिया व्हाट इट केन टीच अस' में कुछ लोगोंसे पूछे जाने पर कि वेदाध्ययन एवं मुद्रणसे हमें मिशिनरियों या जो भारतीयोंको प्रभावित करना चाहे उन्हें इससे क्या लाभ है। उन्होंने बतलाया कि क्योंकि वेदकी महिमा अन्य समस्त प्राचीन ग्रन्थों जैसे मनुस्मृति, महाभारत आदिमें गाई है। वेद ही इनका सबका आधार है। इस प्रकारकी प्रशंसाके अलावा वहां ऐसे भी अनेकों उदाहरण है जिससे सिद्ध होता है कि उनके हृदयमें वैदिक वाङ्मयके प्रति श्रद्धा नहीं है और ये किसी और ही उद्देश्यसे वैदिक वाङ्मय पर विशाल साहित्य निर्माणमें संलग्न हैं। उदाहरणार्थ 'वाट इज वेद' भाषणमें कहते हैं कि वैदिक ऋचामें बचपनी, मुश्किल, सामान्य और भिन्न स्तरकी है। ५० वर्षके वेदाध्ययनसे उन्हें यही मिला, वे आगे कहते हैं कि उस समयके लोगोंने सर्वप्रथम, सूर्य, चन्द्र, नदी, पर्वत, वायु, पृथ्वी आदि देखे अतः उनसे भयभीत होकर अपनी रक्षाके लिये उनसे प्रार्थना करने लगे यही विषय बार बार दोहराया गया है। वेद बहुदेवतावादसे भरे पडे हैं, और जडशक्तियोंकी उपासना व्यक्त करते हैं, जब कि सत्य इसके विपरीत है। मेक्समूलरका वैदिक दृष्टिकोण मूलतः वेदकी आत्मासे दूर ही नहीं विपरीत भी है। यह उनकी भारतीय वेदाध्ययनकी पद्धतिकी अनभिज्ञता प्रकट करता है। वेदोंमें न कहीं जड पूजा है न बहुदेवता बाद, उनमें एक ही ईश्वरको विभिन्न नामोंसे पूकारा गया है जो कि 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' ऋ. १।१६४।४६ से स्पष्ट है। परन्तु जैसा कि उन्होंने अपनी पत्नीको पत्र लिखते हुए (१८८६) स्पष्ट कर दिया कि "मेरे वेद भाष्यका मूल उद्देश्य तो वेदोंको समूल नष्ट करना है" न कि उसके वस्तविक रूपको प्रस्तुत करना तो वे जितना भी वेदकी मौलिक भावनाके विरुद्ध लिख देवे उतना ही थोडा है। उनका वह पत्र इस प्रकार है— मुझे आशा है कि मैं यह कार्य सम्पूर्ण कर सकूंगा और मुझे पूर्ण विश्वास है, यद्यपि मैं उसे देखनेको जीवित नहीं रहूंगा तथापि मेरा यह संस्करण और वेदभाष्य आद्यान्त बहुत हदतक भारतके भाग्यपर और उस देशकी लाखों आत्माओंपर प्रभाव डालेगा, "वेद उनके धर्मका मूल है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और मुझे विश्वास है कि इनको यह दिखाना ही कि वह मूल क्या है। उस धर्मको नष्ट करनेका एक मात्र उपाय है, जो गत तीन हजार वर्षोंसे उससे (वेदसे) उत्पन्न हुआ है।''

मेक्समूलर वेदकी मूल आत्माको नष्ट करके ही शान्त नहीं हो जाना चाहता है वरन् आगे भी वह अपने उद्देश्यको १६ सितम्बर १८६८ को ड्यूक आफ आरगायल तत्कालीन मुख्य सचिव भारत सरकारको लिखे पत्रमें इस प्रकार स्पष्ट करता है—

"भारतके प्राचीन धर्मका पतन हो गया है, यदि अब भी ईसाई धर्म प्रचलित नहीं होता है तो इसमें किसका दोष होगा ?"

वे अपने एक पत्रमें बतलाते हैं कि भारतीय धर्मग्रंथ एवं वेदादि शास्त्रोंको किस प्रकार पढना चाहिये और इस तरहसे पढने पर ही भारतमें तुम्हारा भविष्य सरल हो जायेगा।

२० जनवरी १८८२ को श्री बाईरेन्जी मालाबारीको लिखा, उनका वह पत्र इस प्रकार है—

मैं कमसे कम उन थोडेसे लोगोंको बताना चाहता हूं जिन तक मैं अपने विचार अंग्रेजी द्वारा पहुंचा सकता हूं कि उस प्राचीन धर्मका ऐतिहासिक महत्त्व क्या है ? जैसा कि समझा जाता है न केवल योरोपीय या ईसाईयतकी दृष्टिसे अपितु ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे मैं आपको दो आपत्तियोंसे चेतावनी देना चाहता हूं, प्रथम तो भारतीय राष्ट्र धर्मकी अवहेलना या न्यून मूल्यांकन करना जो प्रायः तुम्हारे अर्ध-यूरोपीय नवयुवकों द्वारा किया जाता है और दूसरे वेदोंका अधिक मूल्यांकन या ऐसा अनुवाद करना जो कभी नहीं किया गया ऐसा दुःखद श्रोत वेदोंपर दयानन्द सरस्वतीके भाष्यमें प्रकट होता है। वेदोंको प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ मानो जिनमें एक प्राचीन और सरल प्रकृतिके मनुष्योंके विचारोंका चित्रण है तब तुम इसकी प्रशंसा कर सकोगे और इससे उपनिषदोंकी शिक्षाओंको इस आधुनिक युगमें भी ग्रहण कर सकोगे लेकिन तुम वेदोंमें खोज करो। बाष्प इंजन, बिजली योरोपीय दर्शन और नैतिकताकी "वेदोंको उसके सत्य रूपसे अलग कर दो और उसके वास्तविक रूपोंको नष्ट कर दो।" और तुम प्राचीन और अर्वाचीनके ऐतिहासिक क्रमको जो इन्हें बांधे हुए है छिन्न भिन्न कर दो, अतीत एक सत्य है और ऐसा मानो। उसका अध्ययन करो तब तुम्हें भविष्यमें अपना मार्ग ठीक करनेमें कम कठिनता होगी।

यह है कि वास्तविक उद्देश्य, जिसके लिये उसने भारतीय धर्म ग्रंथोंपर इतना परिश्रम किया और अन्तमें मैं आपको उसके लक्ष्यकी ओर ले जाना चाहता हूं। उसमें वे किस प्रकार भारतीय नवयुवकोंको स्वधर्म दीक्षित होनेके लिये प्रोत्साहित करता है। १८९९ में ब्रह्मसमाजी एन्. के. मजुमदारको लिखे पत्रमें यह भावनाएं स्पष्ट झलकती है, वह लिखता है कि "तुम जानते हो कि मैंने तुम्हारे भारतके प्रिय धर्मको शुद्ध करनेके लिये प्रयत्न एवं उसके द्वारा उसे अन्य धर्मों विशेष कर ईसाईयतकी पवित्रता और पूर्णताके समीप लानेके कार्यको अनेकों वर्षोंसे अध्ययन किया है। सबसे पहले तुम्हें यह निश्चय करना होगा कि तुम अपने प्राचीन धर्मका कितना भाग त्यागनेको तैयार हो यदि उसका समस्त नहीं जो कि पुराना कहा जाता है तुमने इसमेंसे काफी मात्रामें त्याग दिया है, जैसे बहुदेवता बाद, मूर्ति-पूजा और धूमधामसे की गई बडी पूजा। तत्पश्चात् न्यू ट्रेस्टामेन्ट उठाओ और स्वयं पढो और निश्चय करो कि उसमें लिखें ईसाके शब्द तुम्हें संतुष्ट करते हैं, अथवा नहीं, ईसाके श्रद्धायुक्त वचनोंमें अन्तर्निहित उपदेश तुम तक वैसे ही आवेंगे जैसे कि वे हम तक आते है। हमें उन उपदेशोंका अपना अर्थ करनेका अधिकार नहीं है विशेष कर यदि हम स्वयं उसका भिन्न अर्थ करें। यदि तुम इसकी शिक्षाओंको यथावत् स्वीकार करो तो तुम भी ईसाई हो या हो सकते हो, तुम मुझे अपनी मुख्य परेशानियां बताओ। जो तुम्हें स्पष्ट रूपसे ईसाई बनानेमें बाधा डालती हैं, और जब मैं लिखूंगा तब उसे स्पष्ट करनेकी पूरी कोशिश करूंगा कि किस प्रकार मैंने और मेरे साथियोंने उनका मुकाबिला किया है। मेरी दृष्टिमें भारतका मुख्य भाग ईसाई बन चुका है। तुम्हें ईसाई बननेमें समझानेमें बुझानेकी जरूरत नहीं है। तब तुम स्वयं अपने धर्म परिवर्तनके बारेमें विचार करो। तुमसे पूर्व-गामियोंने पुलका निर्माण कर दिया है। निर्भयतापूर्वक आगे बढो। यह तुम्हारे कारण टूटेगा नहीं, और उसपर तुम्हारे स्वागतके लिये अनेकों मित्र हैं, जिनमें तुम्हारे पुराने मित्र और साथी फ्रेडरिक मैक्समूलरसे ज्यादा कोई प्रबल नहीं होगा।

विश्वके प्रमुख धर्म ग्रंथोंमें वेदका स्थान है, इसका उत्तर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वे अपने पुत्रको इस प्रकार देते हैं श्रेष्ठताकी दृष्टिसे ये धर्म ग्रंथ क्रमशः इस प्रकार हैं, ओल्ड और न्यू टेस्टामेन्ट, कुरान, बौद्धोंकी त्रिपिटका, कन्फूसीसका धर्म ग्रंथ, वेद और जिन्दावस्ता। तथाकथित वेद प्रेमी प्रो० मेक्समूलरका यह तुलनात्मक मूल्यांकन।

फ्रेडरिक मेक्समूलरके भारतीय धर्म ग्रंथोंके भाष्य एवं साहित्य सृजनमें विशेषतः रुचि लेनेके उद्देश्यका प्रामाणिक उत्तर इन व्यक्तिगत पत्रोंसे अधिक और क्या हो सकता है, वे आजीवन एक छद्मवेशीकी तरह वैदिक वाङ्मय विरोधी साहित्यका सृजन करते रहे और जिन भावनाओंको स्पष्ट रूपसे अपने भाषणों या ग्रंथोंमें व्यक्त न कर सके, उसे उन्होंने अपने पारिवारिक सदस्यों एवं मित्रोंको लिखकर किया। वे ५० वर्ष तक अनवरत लार्ड मैकालेकी भारत विरोधी साहित्य सृजनकी योजनानुसार भारतीय जनताका वेदादि शास्त्रोंके प्रति श्रद्धा और पाश्चात्य जगत्में इनको हेय एवं निम्न कोटिका सिद्ध करनेका प्रयत्न करते रहे। हांलाकि अब उनकी वेद सम्बन्धी लगभग सभी कल्पनाएं मिथ्या सिद्ध हो चुकी हैं और भारतीय धीरे धीरे मेक्समूलरके वैदिक वाङ्मय अध्ययनके उद्देश्यको समझते जा रहे हैं। फिर भी उनके बोये बीज आज भी कभी कभी अकुंरित हो उठते हैं।

(समस्त पत्र मेक्समूलरकी जीवनी और पत्रोंसे लिये गये हैं)

गीता पुरुषार्थ–बोधिनी

[लेखक— श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर]

'मैंने श्री पं. सातवलेकरजी की लिखी हुई श्रीमद्भगवद्गीता पर 'पुरुषार्थ–बोधिनी' टीका पढी और मैं उससे अत्यन्त प्रभावित हुआ। यह टीका पढकर मैं समझ सका कि गीता केवल आध्यात्मग्रंथ ही नहीं है, अपितु वह इस लोकको बनानेवाला ग्रंथ भी है। वह संसार छोडकर और वीतराग बनकर जंगलमें जानेका उपदेश नहीं देती, अपितु संसारमें ही रहकर पग–पग पर आनेवाले संकटोंसे किस प्रकार टक्कर ली जाए, इसका मार्ग बताती है। मेरी यह निश्चित धारणा है कि यह प्रत्येक संस्था व कालेजोंके द्वारा एक संग्रह करने योग्य ग्रंथ है।'

—महात्मागांधी

'यह गीता पर एक अनोखी टीका है, जिसने गीताके एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर, जो आजतक विद्वानोंकी दृष्टिसे ओझल था, भरपूर प्रकाश डाला है। मुझे यह पढकर अत्यन्त आनन्द हुआ। मुझे आशा है कि पाठक इसे हृदयसे अपनायेंगे।'

—चिं. द्वा. देशमुख, उपकुलपति– दिल्ली विश्वविद्यालय

यह टीका अपने ढंगकी एक ही है। जिस किसीने भी इसे पढा, मुक्तकण्ठसे इसे सराहा। सभी उच्च कोटीके विद्वानोंने इसकी बडी प्रशंसा की। इसकी मांग अत्यधिक है, अतः पाठकोंके आग्रह पर हमें इसकी चौथी आवृत्ति निकालनी पडी। यह ग्रंथ हिन्दी, मराठी और अंग्रेजी तीन भाषाओंमें मिल सकती है, आप भी शीघ्रता कीजिए। शिक्षण–संस्थाओं तथा अन्य संस्थाओंको तथा व्यापारियोंको भी उचित कमीशन पर ये पुस्तकें मिल सकेंगी।

पृष्ठ संख्या ८५०] [मूल्य ३०) रुपये (डा. व्य. पृथक्)

पुस्तक तथा विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखें—

व्यवस्थापक– स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट– 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी),' पारडी [जि. बलसाड] (गुजरात)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पं. सातवलेकर जीवन–प्रदीप

मूल लेखक— श्री पु. पां. गोखले] [अनुवादक— श्री श्रुतिशील शर्मा

[गताङ्कसे आगे]

"१९२० सन्में मुझे सोमण (लोकप्रिय भाऊसाहेब सोमण, सतारा) ने जिला काँग्रेस कमेटीका अध्यक्ष बनाया, उसीके फलस्वरूप मेरा दौरा भी शुरु हो गया।"

इससे साताराके कलेक्टर मोयसीकी आंखोंमें सरसों फूल उठी और उसने औंध रियासतके राजासे इसके बारेमें पूछ-ताछ की, पर पंडितजी रियासती प्रजाकी और वेदोंकी सेवा करनेका बहाना बनाकर बडी कुशलतासे बच निकले। आगे जाकर जिला कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष अष्टपुत्रे वकील हो गए और पंडितजी अब मुख्यतः औंध रियासतकी प्रजाओंकी सेवामें लग गए। १९२१ से रियासतके अर्थसंकल्पपर अर्थ-शास्त्रियोंकी सलाह पंत प्रतिनिधि लेने लग गए थे। वस्तुतः इसका प्रारम्भ तो पंडितजीके स्नेहपूर्ण और प्रकल्पक (Constructive) सलाहोंसे ही हुआ था। उसके बाद तो ग्रामपंचायतको संगठित करनेका एक महान् कार्य पंडितजीने सम्हाल लिया और इस कार्यके लिए वे रियासत भरमें घूमने लग गये। इधर एक तरफ पंडितजी अपने प्रात्यक्षिक प्रयत्नोंसे ग्रामसुधारका कार्य करने लगे और उधर दूसरी तरफ सोलापुरके श्री त्र्यं. ना. आत्रेने अपने "गावगाडा" नामक ग्रंथके द्वारा इस सुधार कार्यको और ज्यादा प्रोत्साहित किया। सतारा जिलेके अंग्रेजी इलाकोंमें परचुरे शास्त्रीने सुप्त लोगोंको जाग्रत करनेके लिए गांवोंमें पदयात्रा करनी शुरू की। बीसवें शतकके प्रारंभके २५ वर्षोंमें यह कार्य बहुत वेगपर था, उसी समय "आमचा गांव–बदलापुर" (हमारा गांव–बदलापुर) के रचयिता श्री नारायण गोविन्द चापेकर औंधके उच्च न्यायालयमें न्याया-धीश नियुक्त होकर औंध पधारे, उनके आनेसे ग्राम-सुधारका कार्य और जोर पकड गया। फलस्वरूप गांवोंको हर दृष्टिसे स्वावलम्बी बनानेकी योजनाओंपर अत्यधिक बल दिया गया। इसी बीचमें औंधके राजपुत्र श्री अप्पासाहेब पंत बैरिस्टर होकर नये विचारोंसे सम्पन्न होकर आए। इन सबोंने मिलकर औंध रियासतको पूरी तरह बदल दिया। एक ग्रंथकारने तत्कालीन औंधकी स्थितिका चित्रण इस प्रकार किया है—

"केवल दक्षिणी रियासतोंमें ही नहीं अपितु सकल भारतीय रियासतोंमें औंध अग्रणी था। १९२१ में जब कि दूसरी रियासतोंमें राजकीयसुधारका नामोनिशान भी नहीं था, औंधके प्रगतिशील बालासाहब पंत प्रतिनिधिने रियासतके वार्षिक बजटपर नेताओंकी सलाह लेकर राजकीयसुधार योजनाकी नींव डाली। इस तरहकी प्रथा शुरू करनेवाले ये प्रथम राजा थे और आगे आनेवाले अठारह वर्षके कालमें अपनी रियासतमें उत्तरदायित्व पूर्ण राज्यपद्धतिकी स्थापना करनेवाले ये प्रथम राजा थे। १९३९ में ग्राम पंचायतके आधारपर राज्यपद्धति स्थापित की गई और वहांकी प्रजाओंको पूर्णरूपसे स्वतंत्रता दे दी गई। श्री बालासाहबको उनके पुत्र बैरिस्टर अप्पा साहब पन्तकी प्रकल्पक सहायता मिलनेके कारण राजासाहबकी अपनी रियासतमें सम्पूर्ण उत्तरदायित्वसे पूर्ण राज्यपद्धतिकी स्थापना करना सरल हो गया। औंधके स्वराज्यकी रूपरेखाको म. गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरु आदि महापुरुषोंका आशीर्वाद प्राप्त होगया था। औंधमें नये प्रयोग की सफलतामें कई लोगोंको सन्देह था। पर अनुभवमें आने पर यह शंका बिल्कुल थोथी साबित हुई। ग्राम पंचायतका कारभार बहुत उत्तम हुआ। औंध रियासतके राजकीय सुधार के कामोंमें श्री लक्ष्मणराव किर्लोस्कर, पण्डित सातवलेकर, बै. अप्पासाहब पन्त इन तीनोंका परिश्रम बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। औंधकी प्रतिनिधि सभाके अधिवेशन अपने अपने समयपर होते थे। १९३१–१९३७ तकके दरम्यान औंध प्रजापरिषद्के चार अधिवेशन हुए और लोगोंको मानों इस प्रकार अपनी अपनी शिकायतें प्रस्तुत करनेके लिए वाणी मिली।" (दक्षिण महाराष्ट्रमें लिलीनीकरणकी कथा)

पंजाबके ओडवायरी शिकंजेसे छूटकर पंडितजीने औंधके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्नेहछायाका आश्रय लिया। वहां आकर भी उन्होंने अपने लोक जागृतिके कामको जारी ही रखा। औंधके विधिमण्डलमें पंडितजी सलाहकारके रूपमें नियुक्त किए गए। वहां भी उन्होंने उस सभाके अन्य सभासदोंको काम करनेकी शिक्षा दी।

औंध रियासतके इस प्रातिनिधिक सभाके अधिकारोंमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और १९२६ में संविधान बनाने और राज्यके कार्यादिके बारेमें सर्वसाधारण प्रस्ताव प्रस्तुत करनेके अधिकार इसे मिल गए। इसी वर्षसे दिसम्बर और जूनके महीनेमें यह सभा बुलानेकी प्रथा शुरु हो गई। १९२६ की पहिली ही सभामें पंडितजीने एक सुझाव पेश किया कि "कम खर्च करनेसे और अनावश्यक नौकरोंको निकालनेके कारण से बची हुई रकम रियासतके ऊपर लदे हुए कर्जको चुकानेमें लगाई जाए" (रियासतोंमें लोकतंत्रीय आन्दोलन पृ. ८६)। उन्होंने लोगोंके सामने यह प्रश्न रखा कि–" यदि इस रियासतकी आय पहलेकी अपेक्षा बढ गई है, तो फिर इस रियासतकी यह दुर्दशा क्यों है? इसकी आय सत्तर हजार रुपये ज्यादा हो गई है और हमें यह भी आश्वासन दिया गया है, कि इस बढी हुई रकमका उपयोग कर्ज अदा करनेमें किया जाएगा, पर हमें यह संभव प्रतीत नहीं होता।" उस सभामें पंडितजीने एक मांग रखी कि इस सारे कार्यकी जांचके लिए एक कमीशन नियुक्त किया जाए और उनका यह प्रस्ताव पास भी होगया। इसके अलावा पंडितजीने मार्गदर्शनका भी काम किया। १९२६ में दिसम्बरके अधिवेशनमें पंडितजीने अपने भाषणमें स्पष्ट कहा कि– " प्रजाके प्रतिनिधि अब यह अच्छी तरह समझ गए हैं कि अब हमारी कोई सुनता नहीं है। लोगोंने जब हमें चुना, तब उन्होंने हमसे यही पूछा कि तुम्हें हमने पिछले तीन वर्ष चुनकर भेजा वह क्या केवल इसी लिए कि तुम हमारी जमीनका लगान डेढगुना कर दो? पिछले वर्ष निश्चित किए गए बजटके अनुसार व्यय न करके पैंतीस हजार रुपये ज्यादा खर्च कर डाले और प्रातिनिधिक सभाकी सम्मतिके बिना ही लगान डेढगुना बढा दिया, यह सब क्यों और कैसे हुआ?"

सन् १९२९ के दिसम्बर महीनेमें १९३० के औंधरियासतके राज्यकी पुनर्घटनाके बारेमें एक विधेयक सभाके आगे प्रस्तुत किया है। उसकी मुक्त कंठसे स्तुति करते हुए पंडितजीने कहा कि यदि इस विधेयकके अनुसार सब कार्य किया जाए तो इस रियासतमें निस्सन्देह रामराज्य स्थापित हो जाएगा।

सन् १९२८ और १९३५ में इनकम टॅक्सका बिल आनेपर अ. वि. पटवर्धन, ल. का. किर्लोस्कर, ओगले और दर्शनेके समान पंडितजीने भी उसका बडा जोरदार विरोध किया। क्योंकि उस समय रियासतमें प्रत्येक व्यक्तिसे लिये जानेवाले करकी औसत साढे छै रुपये पडती थी। इस प्रस्तावपर बोलते हुए पंडितजीने कहा था कि– " पिछले पांच वर्षोंके उत्पन्नके औसतपर विचार करके आगेकी योजनायें बनाई जाए और उस आयसे कर्ज उतारकर बाकी बची हुई रकम विभिन्न विभागोंको खर्चके लिए दे दी जाए।" सन् १९३३ में पंडितजीने खेतीके लगानको कम करनेके विषयमें विचार करनेके लिए एक कमेटी स्थापित करनेका एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, जो अस्वीकृत हो गया था। १९३४में पंडितजी फिर चुन लिए गए। १९३६ में आटपाडी और महालमें अकाल पडा और वहांके करीब दोहजार किसान २९ अगस्त १९३८ के दिन औंध आए। उस समय अप्पासाहब पंत, रामभाऊ इंगळे और पंडितजी उनसे मिले, अकालके बारेमें उनकी दर्दभरी कहानी सुनी और उनके दुःखोंको दूर करनेके लिए उन्होंने प्रयत्न भी किए।

लोगोंकी दृष्टिमें भले ही औंध रियासत छोटी सी प्रतीत होती हो, और उस रियासतमें पंडितजीके द्वारा किया हुआ काम भी अन्य महापुरुषोंके द्वारा किये गए कामकी तुलनामें थोडा ही प्रतीत हो, पर पंडितजीने जो भी कुछ किया वह स्वयंमें एक आदर्शभूत है। हो सकता है कि सूर्यकी तुलनामें चन्द्रका प्रकाश नगण्यसा हो, पर फिर भी चन्द्रके प्रकाशकी सत्तासे इन्कार नहीं किया जा सकता। रातके समय जब सूर्य अस्ताचलको जा चुका होता है तब प्रकाशके लिए केवलमात्र चन्द्रका ही सहारा लेना पडता है। इसी प्रकार अन्य महापुरुषोंके कार्यकी तुलनामें पंडितजीके प्रयत्न भले ही इतने विशद न हों पर फिर भी उनके प्रयत्न स्वयंमें उतने ही तेजस्वी और प्रेरक हैं। यदि हम उस समयके अनेक रियासतोंकी तुलना करें तो उस तुलनाकी पृष्ठभूमिपर औंधकी रियासत और उस रियासतकी उन्नतिके लिए पंडितजी द्वारा किए गए प्रयत्न देदीप्यमान ही प्रतीत होंगे।

महाराष्ट्रमें उस समय औंध रियासत बहुत प्रगतिशील और उन्नतिशील मानी जाती थी। उसी समय भोर रियासत भी औंध रियासतके प्रतिगामी रियासतके रूपमें नजर आ रही थी। भोर रियासतमें प्रथम आन्दोलन सन् १९२१ में प्रारंभ हुआ और उस आन्दोलनकी शुरुआत सभाबन्दीके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कायदेको तोडनेसे हुई। इस आन्दोलनके सर्वप्रथम प्रवर्तक थे सर्वश्री न. चि. केलकर और वामनराव पटवर्धन। इस परसे भोर रियासतके राज्यशासनकी कल्पना आसानीसे की जा सकती है। भोरमें प्रजातंत्रीय आन्दोलन बहुत जोरदार था, और उसने इस क्षेत्रमें अन्य सभी रियासतोंको पछाड दिया था। सर्वश्री गोपीनाथपंत पोतनीस और भाऊसाहब शेटये भोर रियासतके आन्दोलनके कर्णधार थे। इन दोनों नेताओंका अपने अनुयायियोंपर इतना अधिक प्रभाव था कि इनकी एक पुकारपर हजारों लोग आकर इकट्ठा हो जाते थे। पोतनीस अनेकबार भोर राजदरबारके कोपभाजन बने। इनके अलावा और भी अनेक कार्यकर्ता सीखचोंके पीछे डाल दिए गए। पर इसके बावजूद भी प्रजाओंमें वही उत्साह और वही जोश कायम रहा। राजदरबारने नेताओंको तो बन्द कर दिया, पर वह प्रजाओंके उत्साहको ठण्डा न कर सका। कुछ लोगोंने इस प्रजापरिषद्के विरुद्ध अपने एक स्वतंत्र लोकपक्षकी स्थापना की और उस लोकपक्षको राजदरबारका वरद हस्त भी प्राप्त हो गया था, पर प्रजा परिषद्के सामने यह लोकपक्ष ज्यादा समय तक टिक न पाया और अन्तमें उसी प्रजापरिषद्में वह विलीन भी हो गया। इस लोकपक्षके कर्णधारोंमेंसे चन्द्रशेखरराव आगाशे और ग. मा. पानसे विशेषतः उल्लेखनीय हैं। १९२२ से लेकर १९३९ तक अर्थात् इन सत्रह वर्षोंमें भोज परिषद्के बारह अधिवेशन हुए। १९२८ में परिषद्से बाध्य होकर एक विधिमंडलकी स्थापना की गई। पर मंत्रियोंकी राजकीय वृत्ति बहुत संकुचित होने और अदूरदर्शिताके कारण राजकीय सुधारके क्षेत्रमें वह रियासत पिछडी ही रही। यदि वहांके अधिकारियोंने वहांके बुद्धिमानों, विचारकों और दूर दृष्टिवालोंकी सलाह ली होती और उसके अनुसार कार्य किया होता तो उस रियासतकी कायापलट हो गई होती। पर वैसा न हो सका। ये रियासतदार ब्रिटिश साम्राज्य और उसके रेजिडेण्टके आगे हमेशा भीगीबिल्ली बने रहते थे, क्योंकि उन्हें हमेशा यह डर लगा रहता था, कि रेजिडेण्ट उनसे खफा होकर कहीं उनका अधिकार न छीन ले। इसीलिए ब्रिटिश अधिकारियोंका प्रिय बननेके लिए ये आन्दोलनकारियोंपर मनमाना जुल्म करते थे। इसी कारण ये राजा ज्यादा लोकप्रिय नहीं हो पाये। इन्हीं कतिपय कारणोंसे भोर रियासतमें जितने ज्यादा आन्दोलन उठ खडे हुए और जिन अत्याचारपूर्ण उपायोंसे उन आन्दोलनोंको दबा दिया, उतना जुल्म दक्षिणी महाराष्ट्रके और किसी भी रियासतमें नहीं हुआ।

दक्षिणी महाराष्ट्रके चौदह रियासतोंमें कोल्हापुरकी रियासत सबसे बडी थी। कोल्हापुरमें छत्रपति शिवाजीकी गद्दी होनेके कारण सारे महाराष्ट्रीय लोगोंके हृदयमें उस गद्दीके प्रति आदरकी भावना थी और उसके प्रति लोगोंमें अपनत्वके भाव भी थे। बीसवीं शताब्दीके प्रारंभमें कोल्हापुरमें भी राजकीय आन्दोलनका प्रारंभ हुआ, पर अत्याचारोंके द्वारा उसे दबा दिया गया। उस समयके आन्दोलन कारियोंमें इस अत्याचारके शिकार प्रो. विजापुरकर, प्रो. वा. स. जोशी और पं. सातवलेकर बने। कोल्हापुरमें जब जब यह राजनैतिक जागरणका काम प्रारंभ किया गया, तब तब वह बडी ही निर्दयतासे दबा दिया गया। कोल्हापुरके शाहू छत्रपति बहुत कर्तव्यपरायण थे, पर उनका सारा प्रयत्न ब्रिटिश रेजिडेण्टको खुश करनेके लिए ही होता था। अतः इन आन्दोलनोंसे ब्रिटिश अधिकारियोंको उनकी स्वामिभक्तिमें सन्देह न हो जाए, इसलिए वे इन आन्दोलनोंको यथासंभव दबा देनेका ही प्रयत्न करते थे। कोल्हापुरमें महाराजा और सर राजारामने शिक्षण क्षेत्रमें बडे प्रशंसनीय प्रयत्न किए, सामाजिक समतावाद स्थापित किया, पर राजनैतिक सुधारके क्षेत्रमें उन्होंने अपनी प्रजाओंको पिछडा हुआ ही रखा। दूसरी रियासतोंकी प्रजाओंमें यह राजनैतिक सुधार थोडे बहुत अंश में अवश्य दृष्टिगोचर होता था। और औंध जैसी छोटीसी रियासतमें तो यह लोकतंत्रीय राज्य पूर्णरूपसे अमलमें लाया जा चुका था। पर कोल्हापुरमें शाहूकी तानाशाही अपने पूरे जोरपर थी। १९३८ में श्री माधवराव बागलने इस निरंकुश राज्यसत्तापर बडा प्रबल प्रहार किया, फलतः ६।२। १९३९ के दिन जयसिंहपुरमें कोल्हापुर प्रजापरिषद्की विधिवत् स्थापना हो गई। आगे चलकर इस परिषद् और दरबारमें एक वैमनस्य उत्पन्न हो गया। रत्नाप्पा कुम्भारने इस परिषद्के संगठनको और ज्यादा बलशाली किया, परिणामस्वरूप अल्प समयमें ही यह परिषद् एक प्रभावशाली संस्था बन गई। इस परिषदका प्रथम अधिवेशन डॉ. पट्टाभि सीतारमैय्याकी अध्यक्षतामें दिनांक १५।४।१९३९ को करनेका निश्चय हुआ। पर जिस प्रकार औंध प्रजापरिषद्के अधिवेशन रियासतकी सीमामें ही होते थे, उस प्रकार कोल्हापुरकी राज्यसीमामें इस अधिवेशनको करनेकी सुविधा न

×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होनेके कारण उसके संयोजकोंने यह सभा कोल्हापुरसे तीस मील दूर सांगलीके पास कुपवाडमें संयोजित की। इस परिषद्की प्रतिदिन उन्नति होती गई, इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि इस समयकी परिषद्के नेता ब्राह्मण न होकर श्री बागल जैसे छत्रपती वंशीय ही थे। श्री बागल एक बडे प्रभावशाली वक्ता माने जाते थे। वे बहुजन समाजकी भाषामें बहुजनहिताय और बहुजनसुखाय ही बोलते थे, इसीलिए वे अल्प समयमें ही एक लोकप्रिय नेता हो गए। सभाबन्दीका हुक्म तोडनेके कारण उन्हें दरबारके रोषका शिकार बनना पडा। पर उसका परिणाम यह हुआ कि यह परिषद् प्रतिदिन लोकप्रिय बनती चली गई। इस प्रकार सर्वश्री बागल और कुम्भारने मिलकर कोल्हापुरकी सुदृढ राज्यसत्ताकी जडें हिलाकर रख दीं। इनके इस कार्यमें सर्वश्री शंकररावदेव, ह. मो. जोशी, और बा. वि. शिखरे आदि अन्य नेताओंकी भी बहुत सहायता मिली।

अक्कलकोट रियासतमें १९२३, १९२४ और १९२९ इन तीन वर्षोंमें प्रजापरिषद्के अधिवेशन हुए। इस परिषद्के प्रति राजदरबारकी नजर सहानुभूतिपूर्ण न होकर रोषभरी थी। इस परिषद्के कार्यकर्ताओंको बहुत कष्ट दिए गए। इस कारण अगले कई वर्षोंतक इस परिषद्के अधिवेशन ही न हो सके। पर आखिरकार १९३८ में दशहरेके मुहूर्तपर अक्कलकोटके राजदरबारने राजनैतिक सुधार करनेकी अनुज्ञा प्रदान कर दी।

मुधोल रियासतमें भी इस प्रकारके आन्दोलनोंको कुचलनेके प्रयत्न होते ही रहे। पर १९३७ में तत्कालीन राजाके अवसानके पश्चात् उस रियासतमें भी राजकीय जीवनकी शुरुआत हो गई। मुधोलकी परिषद्के प्रथम अधिवेशन करनेमें, लोगोंमें जाग्रति फैलानेमें और प्रजाओंका सहकार्य प्राप्त करनेमें ही तीन बरस गुजर गए और ता. १८।४। १९४० को डॉ. नागनगौडकी अध्यक्षतामें मुधोलराज्यकी प्रजा परिषद्का सर्वप्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

जंजिरा और सावनूर इन दो मुसलमानी रियासतोंमेंसे जंजिरा राज्यमें १९२६, १९२७ और १९३२ में परिषद्के तीन अधिवेशन हुए। इस कारण उस रियासतका राजदरबार भी हडबडाकर उठ बैठा और उसने भी अत्याचारका मार्ग अपना लिया। लिहाजा करीब करीब सभी कार्यकर्ता बन्दी बना लिए गए। इसके कारण वह आन्दोलन जो पिछडता गया, वह पिछडता ही चला गया। सावनूर रियासतमें कोई आन्दोलन उठा ही नहीं।

—(रियासतोंके विलीनीकरणकी कथा)

अपनी प्रजाके विषयमें बेदरकार रहनेवाली और बेमुरौव्वत रियासतोंकी तुलनामें औंध बहुत प्रगतिशील था। इसका कारण यह था कि उस रियासतको पंडितजी जैसे मार्गदर्शक और नेता प्राप्त हुए थे।

औंध रियासतमें १९३२ में ही स्वराज्य स्थापित हो गया था। फलटण और सांगली इन दोनों रियासतोंमें दो दलोंकी राज्यपद्धति चल रही थी, इस कारण इन रियासतोंके राज्यशासनमें प्रजातंत्रीय नेताओंका भी थोडा बहुत हाथ रहता था। मीरज और मीरजमळा रियासतोंमें अधिकारियोंका एक विधिमण्डल स्थापित हो गया था। कुरुन्दवाड (छोटाभाग) में राजकीय सुधारोंका आश्वासन मात्र था और कुरुन्दवाड (बडाभाग) और कोल्हापुरमें वह आश्वासन भी नहीं था। ऐसी स्थितिमें ग्रामोंको स्वावलम्बी बनानेकी जो राज्यपद्धति औंधमें शुरु हुई, उसे महात्माजीका आशीर्वाद मिल जानेसे ब्रिटिश सरकार चौकन्नी हो गई थी। पर पंडितजीके मार्गदर्शनमें स्थापित ग्रामरक्षक दलको देखकर वाइसरायका प्रतिनिधि किस प्रकार प्रभावित हुआ, उसका वर्णन पीछे किया ही जा चुका है।

ग्रामपंचायतके स्वराज्यका यही अर्थ था कि गांवोंको और किसानोंको स्वावलम्बी तथा समृद्ध बनानेके लिए सर्वप्रथम बेकारीको समाप्त करनी चाहिए। उत्पादनको विकसित करनेमें धनार्जनका लोभ उपयोगी नहीं होता। दरिद्रतासे ग्रस्त किसानोंकी मनोवृत्ति बदलनी पडती है। उसके लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि उनके मनमें सुखी और समृद्ध जीवन की चेतना जगाकर उनके जीवनमें एक नई आशा, एक नई अभिलाषा और एक नई उमंगका संचार किया जाए। गांवके हर किसानोंको नवीन नवीन कृषियंत्र दिए जाने चाहिए, इसके अलावा अन्य साहित्य भी उन्हें भरपूर प्रमाणमें उपलब्ध होने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रोंमें छोटे मोटे उद्योग धन्दे भी स्थापित किए जाने चाहिए और इस प्रकार श्रमिकोंके अर्जनमें उत्तरोत्तर प्रगति करनी चाहिए। औंधके इस राजकीय सुधारके बारेमें पंडितजीका अभिप्राय स्वागतार्ह था। वे कहते हैं कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" रियासती शासन निरंकुश था। निरंकुशशासनके दोष प्रजाओंकी नजरमें आचुके थे। रियासतके सर्वेसर्वा राजाओंकी इस निरंकुशताको समाप्त करने और प्रजाके नेताओंको राज्य शासनमें अधिकार दिलानेके लिए रिसायतकी प्रजाओंमें आन्दोलन चल रहे थे। उन आन्दोलनोंका औंध रियासत पर जो परिणाम हुआ, वह द्रष्टव्य था। "

औन्धकी प्रजाकी क्रान्तिको मद्देनजर रखते हुए वहांके राजा साहबने वहांकी प्रजाओंको निम्नलिखित अधिकार प्रदान कर दिए—

(१) प्रत्येक गांवमें प्रजाद्वारा नियुक्त ग्रामपंचायतकी स्थापना

(२) ग्रामपंचायतमें ही सभी झगडोंका निर्णय।

(३) प्रत्येक गांवमें ग्रामरक्षकदलकी स्थापना, हर रात गांवमें पहरा देना और इस प्रकार गांवकी सुरक्षा करना।

(४) गांवको स्वच्छ रखकर अन्य भी आरोग्यके साधनोंके द्वारा गांवको स्वस्थ बनाना।

(५) गांवके सभी मुकदमोंका निर्णय तथा अन्य भी काम यथायोग्य रीतिसे करनेका संरक्षकदलको अधिकार।

इस प्रकार अधिकार मिल जानेपर हरएक गांवमें समाधान और शान्तिकी लहर फैल गई।

स्वराज्यकी उत्तमताको परखनेकी कसौटी यही है कि उस देशकी प्रजा यह समझे कि उसके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंके द्वारा चलाया गया शासन उनका कल्याण करनेवाला है। इस कसौटी पर खरा उतरनेवाला स्वराज्य ही वास्तविक स्वराज्य है।

१२ स्वयंसेवक पंडितजी

डॉ. हेडगेवार द्वारा संस्थापित राष्ट्रीय स्वयंसेवक संस्था एक देशभक्त संस्था है। इस संस्थाने अनेक बार राष्ट्रको संकटोंसे बचाया है। यह शुद्ध भारतीय संस्कृतिका अनुकरण करनेवाली है। पंडित सातवलेकरजी इस संस्थाके अनेकों वर्षों तक सदस्य रहे हैं और अपना सहकार्य इस संस्थाको प्रदान करते आए हैं। इस विषयमें पंडितजी स्वयं लिखते हैं—

" सन् १९३६ में सातारामें मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवकका सदस्य बना और उसी समय मैंने संघकी प्रतिज्ञा की और तदनुसार औंध रियासतमें शाखाप्रमुख और शाखासंचालकके रूपमें मैं काम करने लगा। मैंने १६ वर्ष तक इस संघमें काम किया और सोलह वर्षोंके इस प्रदीर्घ कालमें मैंने यह अच्छी तरह जान लिया है कि यह संघ हिन्दुजातिको संघटित करके बलवान् बनानेवाली एक संस्था है। इस संघके कार्यका निरीक्षण करनेके लिए मैं सारा हिन्दुस्तान घूमा हूँ। क्वेटा, पेशावर, रावलपिंडी, मुलतान, अमृतसर, लाहौर, सियालकोट, जम्मू, होशियारपुर, पटियाला, दिल्ली आदि शाखाओंका कार्य देखकर मुझे बडा समाधान मिला। पंजाबका उत्साह अवर्णनीय था। पंजाबमें इस संघने अनेकों ऐसे कार्य किए हैं, कि जिससे इस संघकी राष्ट्रभक्ति व्यक्त होती है। पाकिस्तान बननेके बाद भागदौडमें इस संघके स्वयंसेवकोंने प्राणोंको हथेलीपर रखकर अनेक हिन्दुओंके प्राण बचाये। इस काममें डेढसौ स्वयंसेवक अपनी जानसे हाथ भी धो बैठे। सेवाका यह अपूर्व कार्य स्वयंसेवकोंने किया। "

" उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, राजस्थान, काठियावाड, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि प्रान्तोंमें भी संघ शाखाओंका मैंने निरीक्षण किया, पर पंजाबी स्वयंसेवक मुझे सबसे ज्यादा पसन्द आए। इतना घूमने फिरने और संघका काम प्रत्यक्ष करनेके बाद मेरा यह निश्चित मत हो गया कि यह संघ हिन्दुओंको संघटित करनेवाली एक संस्था है। "

" इस प्रकार निश्चय हो जानेके बाद मैं संघका काम करने लगा। औंधकी हमारी शाखा सम्पूर्ण सतारा जिलेमें महत्त्वपूर्ण समझी जाती थी। "

" महात्मा गांधीकी हत्याके बाद बिना किसी कारण सरकारने इस संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस समय अनेकोंको कैदखानेमें बन्द कर दिया गया। यह एक बहुत गलत काम था। महात्मा गांधीके सुपुत्रने गांधीवधके अगले दिन ही रेडियो पर यह कहा था कि यदि राष्ट्रीयसंघके स्वयंसेवकोंको गांधीवधकी पूर्ण सूचना मिल जाती, तो वे अपने जानकी बाजी लगाकर भी महात्माजीको बचा लेते। "

" संघ पूर्णतया निर्दोष था। इतना ही नहीं, अपितु दिल्लीमें भारतसरकारके विरुद्ध नियोजित मुसलमानी षड्यन्त्रको निष्फल करके भारतीय कॉंग्रेस सरकारको सुरक्षित करनेके कार्यमें इस संघने बडा ही महत्त्वपूर्ण योगदान किया था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह सब लौहपुरुष सरदार पटेल जानते थे। इसलिए इस संघ पर उनका अपार प्रेम था। यह सब देखनेके कारण संघकी निर्दोषता पर मुझे पूरा पूरा विश्वास था।

"महात्माजीके वधके बाद महाराष्ट्रमें स्वार्थी लोगोंने जो दंगा खडा कर दिया, उसके कारण महाराष्ट्रमें स्थिति तेजीसे पलटने लग गई और मेरे वेदग्रंथोंके प्रकाशनके कार्यमें विघ्न उपस्थित होने लगे। इस कारण औंध छोडकर मैं पारडी जि. बलसाड आ गया और वहीं स्थायी हो गया।"

"यहां संघकी शाखा न होनेके कारण इस संघके साथ मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रह गया, पर इसके कारण संघ पर मेरा प्रेम जरा भी कम नहीं हुआ।"

जबसे पंडितजीने संघका काम करनेका एकबार निश्चय कर लिया, तबसे पंडितजीका शामका छै बजेका समय कभी नहीं चूका। निश्चित मार्गसे आते, एक घण्टा वहां रहते और फिर वापस चले जाते। संघस्थान पर आकर यदि मालूम पडता कि किसी सदस्यकी तबीयत खराब हो गई है, तो उसी समय अथवा अगले दिन उसके घर जाकर उसके स्वास्थ्यके बारेमें अवश्य पूछताछ करते। उसे औषध बताते, यदि अपने पास होता तो नौकरके हाथों उसे भिजवा देते। औंध जैसे ढाई-तीन हजारकी लोकसंख्यावाले गांवमें पंडितजी संघकी तीन बडी बडी शाखाओंका सञ्चालन करते थे उनमेंसे एक शाखा वहांकी हरिजनबस्तीमें थी।

सतारा जिलेके उत्तरी भागके संघका शिबिर एकबार औंधके हवाई अड्डेके पास सम्पन्न हुआ। बहुत ही जल्दी उसने एक छावनीका रूप धारण कर लिया। औंधके वस्तुसंग्रहालयमेंसे शिवाजी और राणाप्रतापके पुतल लाकर छावनीके ध्वजस्तम्भके पास प्रस्थापित किए गए। उसके पीछे बडे बडे और छोटे छोटे तम्बू गाडे गए। शिबिरके उद्‌घाटनके समय तत्कालीन महाराज श्री बालासाहब पंत प्रतिनिधि भी हाजिर थे। शिबिरका अनुशासित कार्यक्रम अपने समयपत्रकके अनुसार चलता था। दूसरे दिन शामके समय अचानक सारा आकाश बादलोंसे घिर गया। रातमें सोनेका बिगुल बजा। संघ संचालकके साथ पंडितजी भी अपने तम्बूमें चले गए। रातके करीब एक बजेसे जो मूसलाधार बरसात शुरू हुई उसने चारों ओर पानी ही पानी कर दिया।

तो भी किसी प्रकारकी अव्यवस्था वहां दृष्टिगोचर नहीं हुई। सभी स्वयंसेवक अपना सामान लेकर किसी न किसी स्थानका सहारा लिए हुए थे। किसी तरह रात कटी और एकदम सबेरे सभी स्वयंसेवकोंको चलनेका संकेत दे दिया गया। सबसे आगे पंडितजी चल रहे थे। उन्होंने औंध बेंकके मैनेजरको बुलाकर पांच सात आदमियोंकी व्यवस्था की। उसके बाद सभी धर्मशालायें, स्कूल और मन्दिर स्वयंसेवकोंसे भर गए। विभागीय प्रमुखोंके ऊपर कामका भार सौंप कर पंडितजी अपने घर गए और सबेरे ठीक ६॥ बजे फिर कार्यालयमें हाजिर। पर शिबिरके कार्यक्रममें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित नहीं हुआ।

इसी प्रकारका एक और अविस्मरणीय प्रसंग यहां उल्लेखनीय है। औंध संघशाखाके एक उत्सवके प्रसंग पर औंधके राजासाहब भी निमंत्रित थे। समय ५॥ बजेका था। सभी संघस्थल पर एकत्रित हो चुके थे। पर राजासाहबके आनेका कोई चिन्ह अभीतक दिखाई नहीं पडा था। तो भी बिलकुल ठीक समय पर ध्वजारोहण हो गया, प्रार्थना भी हो गई और स्वयंसेवकोंको "आराम" की स्थितिमें खडा कर दिया गया। इतनेमें ही घोडोंके टापोंकी आवाज सुनाई दी। "सावधान! दक्ष!" के साथ प्रणाम करवाया गया। राजासाहबने आते ही पूछा कि मेरे आनेसे पहले झण्डा क्यों फहरा दिया गया?

इसपर पंडितजीका निर्भिकतापूर्ण उत्तर था-"वाटरलूकी लडाईमें नेपोलियनकी सेना कुछ ही मिनट देरसे पहुंची थी इसलिए उसकी पराजय हो गई। यह आप जानते ही हैं न?"

इसके बाद समय पत्रकके अनुसार सारा कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। पंडितजीने तरुणोंमें "जबका काम तभी" और "जिसका काम उसीको" करनेकी आदत डाल दी। इस आदतका उपयोग सन् १९३९ में औंध संस्थानके अन्तर्गत ग्रामरक्षकदलकी स्थापनाके समय हुआ। इस अनुशासनको देखकर वाइसरायके प्रतिनिधिके मुंहसे निकल पडा था कि फिर यहां अंग्रेजोंका क्या काम है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके कार्यकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनेके विषयमें पंडितजीने स्वयं स्पष्टीकरण किया है। वे इस संघके एक आधारस्तंभ थे, वे इसके प्राण थे। इसीलिए पंडितजीने इस संघकी यथाशक्ति सहायता की और वैदिक ऋचाओंके आधारपर संघके अभिप्रेत ध्येयका सर्वत्र प्रचार भी किया। पंडितजीमें नेतृत्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करनेकी कुशलता थी। उनके सामने संघका उज्ज्वल रूप चमक रहा था, इसी चमकसे आकर्षित होकर पंडितजीने स्वयंसेवक संघकी कार्यधुरा वहन की।

अपनी इच्छासे राष्ट्रकी सेवा करनेकी अभिलाषा करनेवालोंके समुदायका नाम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। यह संस्था डॉ. केशव बलिराम हेडगेवारने (१८९०-१९४०) ने सन् १९२५ में विजयादशमीके शुभावसरपर नागपुरमें स्थापित की थी। उनका यह निश्चित विचार था कि हिन्दुओंमें यदि एक नई जाग्रति और एक नई चेतना जगानी हो, तो सर्वप्रथम उन्हें संघटित करना पडेगा। इसी दृष्टिसे उन्होंने इस संघकी स्थापना की थी। संघका ध्वज भगवा है और इस संघमें अनुशासनपर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जाता है। इस संघमें हिन्दू संस्कृतिको समझानेके लिए समय समयपर भाषण भी होते हैं। १९३२ में सर्वप्रथम यह संघ मध्यप्रान्तके सरकारके रोषपूर्ण दृष्टिका शिकार बना, उसके बाद अन्य प्रान्तीय सरकारोंने भी उसका अनुसरण किया। इसके बावजूद भी संघका काम बढता गया। गुरुदक्षिणाके रूपमें पैसेकी और स्वयंसेवकोंके रूपमें तरुणोंकी इस संघमें कभी कमी नहीं रही। संघने हिन्दु जनताके हृदयमें अपना घर कर लिया। इसकी इस बढती हुई लोकप्रियता सरकारकी आंखोंमें खटकने लगी। वह इसे दबाने और सर्वथा नष्ट कर देनेकी कोशिशें करती रहीं, पर इसके विपरीत यह दिनोंदिन बढता चला गया। इस संघका एक ही ध्येय है और वह है हिन्दु जातिकी उन्नति। इस कामके लिए यह संघ समर्पित हो चुका है। इस संघका राजनीतिसे राई भरका भी सम्बन्ध नहीं, फिर भी सरकार इसकी तरफ वक्रदृष्टिसे देखे, यह एक आश्चर्य नहीं तो और क्या है?

१३ तीन परिषदें

रियासतकी प्रजाकी उन्नतिके कामके सिवाय और कोई काम मैं नहीं करूंगा, इस प्रकारका आश्वासन देकर श्री पंडितजी बीसवें शतकके तीसरे दशकमें औंधमें आकर स्थिर हो गए। औंध रियासतकी प्रजाजनोंकी उन्नतिका लक्ष्य सामने रखकर काम करनेवाले पंडितजीके कार्योंका क्षेत्र क्रमशः विस्तृत होता गया और अन्तमें दक्षिण महाराष्ट्रकी सभी रियासतें उनका कार्यक्षेत्र बन गई। पुराणके मनुकी मछलीके समान आदिमें सूक्ष्म रूप धारण करनेवाला पंडितजीका कार्य धीरे धीरे अपना कलेवर बढाने लगा। पंडितजी इस दृष्टिकोणके थे कि ब्रिटिश-राज्यमें रहनेवाले भारतीय और रियासतोंमें रहनेवाले भारतीय वस्तुतः एक ही हैं। इसी दृष्टिसे उन्होंने सब कार्य किया। १९२० में महात्माजीका असहयोग आन्दोलनका जब श्रीगणेश हुआ, तब सतारा जिलेकी जनताने अपना उत्तम योगदान किया। उस समय भाऊसाहब सोमणके कहनेपर पंडितजीने जिला काँग्रेस कमेटीकी कार्यधुरा सम्हाल ली। महात्माजीने नमक सत्याग्रहका प्रारंभ करके ब्रिटिश सरकारको ललकारा। इस भारतव्यापी आन्दोलनको ठीक रास्तेपर सतत रूपसे चलानेके लिए स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता थी। महाराष्ट्रमें भी उस तरहके स्वयंसेवक निर्माण करनेके लिए सैनिक छावनियोंके समान शिबिर चलानेका निश्चय वहांके नेताओंने किया। कोई भी काम जनता जनार्दनके अनन्त हाथोंकी मददके बिना पूरा नहीं हो सकता, यह एक सर्वसम्मत बात है। इसलिए महात्माजीके इस आन्दोलनके पीछे सतारा जिला भी अपनी जनताके साथ दृढतासे स्थित है, यह दर्शानेके लिए जिला परिषद्की सम्मति आवश्यक हो गई। उसी समय जिला परिषद्का नेतृत्व करनेके लिए पंडितजीके पास प्रस्ताव आया और वह प्रस्ताव उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपने सिरमाथे चढाया। इस प्रकार वे जिला परिषद्के वार्षिक अधिवेशनके अध्यक्ष मनोनीत हो गये।

शनिवार ता. ५ अप्रैल १९३० को सताराके न्यू इंग्लिश स्कूलमें सतारा जिला परिषद्का पांचवां अधिवेशन हुआ। वह अधिवेशन स्थल प्रतिनिधियों एवं दर्शकोंसे पूरी तरह व्याप्त था। परिषद्का मंडप तिलक, गांधी, पटेल आदि अनेकों नेताओंके चित्रोंसे सजाया गया था। स्वागताध्यक्ष श्री गो.वा. जोशीने अपने भाषणमें गांधीजीके दाण्डीसत्याग्रहका गुण गाकर, महाराष्ट्रके उत्साही कार्यकर्ता श्री शिवरामपंतको श्रद्धांजलि अर्पित कर, यतीन्द्रनाथका अन्नत्याग करने एवं बैरिस्टर सेन गुप्त एवं सरदार पटेलके बन्दी होनेके उपलक्ष्यमें उनका अभिनन्दन कर तरुणोंको इस सत्याग्रहमें शामिल होनेके लिए आह्वान दिया। अन्तमें स्वागताध्यक्षने" गांधीके कट्टर अनुयायी पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर इस परिषद्के अध्यक्षपदको स्वीकार करें " इन शब्दोंके साथ पंडितजीको अध्यक्ष-पदके लिए निमंत्रित किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वागताध्यक्षके इस प्रस्तावका लोकप्रिय नेता भाऊसाहब सोमण, सांगलीके विट्ठलराव जोशी और कराडके सेठ गणपतराव बटाणेने अनुमोदन किया। पंडितजीने प्रथम वैदिक ऋचाओंसे परमेश्वर और मातृभूमिको वन्दन करके अपने अध्यक्षीय भाषणमें कहा कि—

"हे मनुष्य! दुर्भाग्यसे सरलतासे न टूटनेवाले बन्धनोंसे जो तू बंधा हुआ है, उन्हें तोडकर मैं तुझे स्वतंत्र करता हूँ। बन्धनसे मुक्त होनेपर तुझे बल, दीर्घायु, तेजकी प्राप्ति होगी और तुझे आनन्दकारक और बलकारक अन्नोंकी भी प्राप्ति होगी। इसलिए तू तेजस्वी वृत्ति धारण कर, कभी दीन मत हो और इन बंधनोंको तोडकर तू स्वतंत्र हो जा।" (अथर्ववेद)

पांचमुखी परमेश्वर (राष्ट्रपुरुष)

परमेश्वरको जो पांच मुखवाला कहा जाता है, उसपर मेरा पूरा विश्वास है। ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कारीगर और अशिक्षित इस प्रकार पांच प्रकारके लोग हमारे राष्ट्रमें हैं। ये ही पांच मुख हमारे उपास्य देवताके हैं। ये पांचों मुख एक ही दिशामें बनाये जाते हैं, इसका अर्थ यही है कि ये पांचों ही शक्तियां एकत्रित होकर रहें। ये शक्तियां इकट्ठी होकर एक ही दिशामें कार्य करें, इन सबका उपयोग एक ही सत्कार्यमें हो। इस दिशामें हमारे प्रयत्न हो रहे हैं, पर इस विषयमें अधिकसे अधिक क्या किया जा सकता है, इसी बारेमें विचार विमर्श करनेके लिए आप लोग यहां सम्मिलित हुए हैं।

सताराका महत्त्व

इस शुभ कामके लिए सताराके समान उत्तम दूसरा कोई शहर मिलना संभव नहीं। क्योंकि इस शहरने एक समय अपनी सभी शक्तियोंका एकीकरण बहुत उत्तम रीतिसे किया था। इसके अलावा सतारा शब्दके उच्चारणके साथ ही भारतकी अन्यतम विभूति छत्रपति शिवाजीकी मूर्ति सामने आकर उपस्थित हो जाती है। छत्रपतिके पूर्व जनताकी शक्ति अनेकों दिशाओंमें बिखरी पडी थी, पर शिवाजीने अपनी कुशलतासे उन बिखरी हुई शक्तियोंको एकत्रित किया और उसे एक दिशामें प्रेरित किया, इस महान् कार्यके कारण ही छत्रपति स्वराज्य स्थापनके कार्यमें सफल हुए। यदि इन बिखरी हुई शक्तियोंको इकट्ठा कर दिया जाए, तो कठिनसे कठिन काम भी आसानीसे किए जा सकते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सतारा शहर इस विषयमें लोगोंके सामने एक आदर्श अवश्य उपस्थित करेगा।

त्याग और आत्मसमर्पण

हमारे सभी पूर्वज हमेशासे हमें यह सन्देश देते आए हैं कि राष्ट्र या समाजकी उन्नति स्वार्थत्यागके बिना नहीं हो सकती। देशके लिए स्वार्थत्याग और धर्मके लिए आत्मसमर्पणका पाठ हमें छत्रपतिने पढाया है। यदि हम इस पर मनन करें, तो आजका मार्ग हमारे सामने स्वयं प्रकट हो जाएगा। हमारे इतिहास ज्योतिषके द्वारा हमारा मार्ग पूर्णतया प्रकाशित हो, यही प्रार्थना परमेश्वरसे करके हम अपने काममें संलग्न हो जाएं।

विचारक्रान्ति

राष्ट्रीय सभाके कार्यको प्रारंभ किए हुए आज ४२ वर्ष हो गए। पहले सभीके ऐसे विचार थे कि यह अंग्रेजी राज्य ईश्वरकी दयासे ही हमें मिला है। पर आगे चलकर लोग समझ गए यह राज्य एक ईश्वरीय वरदान न होकर एक प्रकारकी घुन है, जो इस देशको अन्दरसे खोखला कर रहा है। आज महात्मा गांधी इस राज्यको ईश्वरीय राज्य न कहकर शैतानी राज्य कहने लगे हैं। आजसे चालीस वर्ष पहले जिस राज्यका गुणानुवाद लोग गाया करते थे, उसी राज्य पद्धतिसे अब लोग क्यों तंग आ गए? इसके कारणपर अधिकारियोंको विचार करना चाहिए। आज कैदखानेमें जानेके लिए अनेकों मनुष्य अहमहमिकया आगे आ रहे हैं। इसके रहस्यपर विचार करनेपर अंग्रेजी सत्ताधिकारी सब कुछ समझ जाएंगे। अंग्रेजोंने सब जगह बेकारी और अव्यवस्थाका साम्राज्य फैला रखा है। इस अव्यवस्थाके कारण राष्ट्रभरमें हडताल और सत्याग्रहकी आग जल रही है। लोकमान्य तिलकने इस बेकारीको दूर करनेके लिए स्वदेशी पदार्थोंके उपयोग करनेके व्रतकी योजना लोगोंके सामने रखी, पर यह स्वदेशी व्रतकी योजना बहुत व्यापक होनेके कारण इसका पालन करना बहुत कठिन प्रतीत होने लगा, इसलिए उस योजनाका संक्षिप्तीकरण करके गांधीजीने खादी उद्योगकी योजना प्रस्तुत की।

स्वराज्यकी आकांक्षा

भारतमें अंग्रेजीकी शिक्षा शुरु हुई और उस समय अंग्रेज कहते थे कि यदि इस शिक्षासे जाग्रत एवं शिक्षित होकर भारतीय स्वराज्यप्राप्तिकी अभिलाषा करें, तो यह हमारे लिए भी इष्ट है। यदि उनकी यह बात सत्य थी, तो आज महात्मा गांधी सरकारकी आंखोंमें क्यों खटकते हैं ? एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुंहसे स्वराज्य देनेकी बात करनेवाले और दूसरे मुंहसे भारत-के स्वराज्यप्राप्तिके प्रयत्नोंका विरोध करनेवाले ये अंग्रेज राजद्रोही हैं या सरकारी वचनके अनुसार भारतीय जनताको जाग्रत करनेके लिए अपने प्राणोंतकको न्योछावर करनेवाले राजद्रोही हैं ? इसका विचार सरकार शान्त चित्तवृत्तिसे करे।

आज महात्माजीपर सरकार नाराज है, पर उन्हीं महात्माजीने आजतक सरकारकी कितनी सहायता की है, इस पर भी क्या सरकारने कभी विचार किया है ? हिंसावादी क्रान्तिकारियोंकी क्रान्तिकी आग आज महात्माजीने बहुत अंशतक ठण्डीकर दी है। ऐसे सहायक गांधीको यदि किसीने पूर्ण स्वातंत्र्यवादी बनाया है, तो वह सरकार ही है। राष्ट्रीय सभाको भी सरकारने अपने कृत्योंसे स्वातंत्र्यवादकी तरफ प्रेरित कियां है। जब लोग सज्जनोंको दुःख भोगते हुए और दुष्टोंको चैन उडाते हुए देखते हैं, तब स्वभावतः ही उनके मनमें उस राज्यपद्धतिके प्रति एक प्रकारकी घृणा पैदा हो जाती है और वे उस राज्यको उखाड फेंकनेके लिए तत्पर हो जाते हैं। वही कुछ अवस्था आज भी है।

हमारा मार्ग

आज हमें ही अपना मार्ग निश्चित करना है। हमारा मार्ग आत्मिकबलका है। आन्तरिक या मानसिक बल ही आत्मिक बल है। हमारे अन्दर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक आदि अनेकों तरहकी शक्तियां हैं। स्थूलशक्तिकी अपेक्षा सूक्ष्मशक्ति ज्यादा प्रभावशाली होती है। इसलिए स्थूल राक्षसी शक्तिसे मुकाबला करते समय हमें अपने आन्तरिक सूक्ष्म शक्तिका ही उपयोग करना चाहिए। यह सूक्ष्मबल हमें अन्दर बढाना पडेगा। इसके बावजूद भी शारीरिक शक्तिकी तरफसे हमें बेखबर नहीं होना है। सत्याग्रहियोंको अपने शरीर दृढ बनाकर अपने अन्दर शीतोष्ण आदि द्वन्द्व सहन करनेकी शक्ति बढानी चाहिए। आज हमारा काम दूसरोंसे हाथापाई करनेका नहीं है अपितु स्वयं-को संघर्षकी आगमें झोंकनेका ही है। इस आगमें तपते हुए भी उसे हमें सहन करना ही पडेगा। इसके अलावा हमें यह भी प्रार्थना करनी चाहिए कि जो हमें कष्ट देता है, परमेश्वर उसे सुबुद्धि प्रदान करे। हमें इस प्रकारसे शिक्षित होना है कि जिससे हमारी शारीरिक सहनशक्तिके साथ मनकी वृत्ति भी समतोल और शान्त बनी रहे। यही मनकी अहिंसावृत्ति है। मन और वाणीमें हिंसाको नहीं घुसने देना चाहिए। यदि इतना तप अपनेमें न भी पैदा किया जा सके तो भी इतना आत्मविश्वास तो अवश्य ही उत्पन्न करना चाहिए कि यह राजकीय युद्ध हम अहिंसासे ही जीतेंगे, हम अहिंसाके शस्त्रसे ही शत्रुओंको पराजित करेंगे। यदि हम काया-वाचा-मनसा हिंसा करते गए तो निश्चित है कि यह युद्ध तो हम हार ही जाएंगे, साथ ही हम अपना बडा भारी नुकसान भी कर बैठेंगे। हमें स्वराज्यकी प्राप्ति होनेतक अहिंसाका पालन करना पडेगा, इस पारतंत्र्यरूपी रोगके अच्छा होनेतक अहिंसारूपी पथ्यका पालन करना ही होगा। इस पथ्यकी सहायतासे ही स्वातंत्र्य मिल सकता है। इस अहिंसा व्रतका जो आचरण नहीं कर सकते, वे युद्धसे दूर रहें तो अत्युत्तम है, वे इस युद्ध-क्षेत्रमें दूसरोंकी तपस्यामें विघ्न न डालें। शस्त्रयुद्धमें जिस प्रकार सैनिकशिक्षाकी आवश्यकता पडती है, उसी प्रकार इस सात्विकयुद्धके लिए सात्विकवृत्तिकी शिक्षाकी आवश्यकता है। इस युद्धके लिए आवश्यक जो दस गुण हैं, उनका वर्णन महर्षि पंतजलिने इस प्रकार किया है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (त्यागवृत्तिसे रहना.), सन्तोष, शीतोष्णादि द्वन्द्व सहनेकी शक्ति, पवित्रताका अभ्यास और ईश्वरमें श्रद्धा।

इन गुणोंको महात्माजीने व्यावहारिक रूप देकर राजनीति में भी इन गुणोंको अग्रस्थान दिया है। इतनी वैयक्तिक उन्नतिके बावजूद भी कार्यसिद्धिमें शंका रह सकती है। क्यों-कि कुछ सामाजिक दोष भी होते हैं, जो कार्यसिद्धिमें बाधक बनते हैं। अतः इन सामाजिक दोषोंको भी दूर करना होगा। कमसे कम अस्पृश्यता निवारण तो होना ही चाहिए। इसपर कई लोग यह भी कहेंगे कि क्या तुम सबको साधु बनानेपर तुले हुए हो ? इसपर मैं उन्हींसे पूछूंगा, कि युद्धकी शिक्षा देनेवाले जब सब जगत्को शूर नहीं बना सके, तो हम ही सबको साधु कैसे बना सकेंगे ? यदि हमें एक प्रतिशत जनता भी इस मनोवृत्तिकी मिल जाये, तो भी हमें निश्चय है कि हम आजादी लेकर ही रहेंगे। इस देशमें सन्तों और साधुओंने आजतक जो काम किया है उसके कारण ऐसे मनुष्य मिलने असंभव नहीं हैं। हम यदि प्रयत्नशील हो जाएं तो आशातीत सफलता मिल सकेगी। पर अब इस विषयमें शंका कुशंकाओंको छोडकर काममें जुट जाओ। बाकी सब काम अपने आप हो जाएगा। आज परमात्मा भी हमारे अनुकूल है। हमें तो अब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केवल निमित्तमात्र ही होकर प्रयत्न करना है। आजका मार्ग असहकारिताका मार्ग है। अपने अनुयायियोंके साथ सहकारिता और अपने विरोधियोंके साथ असहकारिता ही एकमात्र मार्ग है।

कानूनभंग

इस विषयमें कानूनभंग भी थोडा बहुत अभीष्ट है। स्वराज्यप्राप्तिके बाद जो कायदे रहनेवाले नहीं हैं, उन्हींको तोडना अभीष्ट है, सभी कायदोंको नहीं। हमारे स्वराज्यमें नमक, शराब और विदेशी कपडोंके कानून रहनेवाले नहीं हैं, इसलिए इन्हीं कानूनोंको तोडना चाहिए।

सतारा जिलेके कर्तव्य

आजके आन्दोलनमें सतारा जिलेका क्या कर्तव्य है, इसका भी विचार आज हमें करना है। यह समय इतिहास लिखने अथवा पढनेका नहीं है, यह तो इतिहासके निर्माण करनेका काल है। हमारा सतारा जिला कर्तृत्ववान् पुरुषोंकी परम्परावाला है। हमारे जिलेका इतिहास स्वराज्यस्थापनाकी दृष्टिसे उज्ज्वल है। जिलेका अन्तःकरण तैय्यार ही है। केवल अब नेताओंको कमर कसना ही है। (१) हमें जो कुछ करना हो, उसको प्रारंभ करें। (२) इस प्रकारकी योजना निश्चित की जाए कि जिससे यह क्रान्ति सदा जीवित और जाग्रत बनी रहे। (३) आज खादीका उत्पादन बहुत ही कम होता है, उसे बढाना चाहिए। (४) राष्ट्रके कार्यके लिए अपनेको न्योछावर करनेवाले लोगोंकी संख्या बढानी चाहिए। साथ ही ब्राह्मण-ब्राह्मणेतरवाद और हिन्दु–मुस्लिमवाद आदि वादोंको नष्ट करना चाहिए।

हे व्यापक दृष्टिके लोगो! मित्रवृत्तिके लोगो एवं विद्वानो! हम तुम सब मिलकर विस्तृत और बहुतोंके द्वारा पालनीय स्वराज्यके लिए यत्न करें। परमेश्वर आपको यशस्वी करें। वन्दे मातरम्।"

सतारा जिला परिषद्के अध्यक्षके रूपमें पंडितजी सतारा जिलेमें घूमने लगे।

इसके बाद आटपाडीमें १९३९ के मई महीनेमें औंधप्रजा-परिषद्का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ, उसके अध्यक्ष श्री अ. वि. पटवर्धन थे। स्वागताध्यक्ष पंडितजी थे। उस समय अपने भाषणमें उन्होंने अनेक योजनायें रखीं।

(१) बेकारोंको काम और भरपूर मजूरी मिले।

(२) प्रजापर इन बेकारोंको पालनेका बोझ न पडे।

(३) रिश्वतके बिना ही न्याय मिले।

(४) सबको शिक्षा मिले।

(५) प्रजाओंको यह न महसूस हो कि अधिकारियोंकी प्रसन्नतामें ही हमारी रक्षा है।

(६) शराब, गांजा, भांग आदि नशीले पदार्थोंकी दूकानें राज्यमें न हों।

(७) रियासतमें परदेशी कपडोंपर प्रतिबन्ध लगाया जाए।

स्वागताध्यक्ष या अध्यक्षके रूपमें हाथी घोडेपर बैठकर जुलूसमें निकलनेवाले आडम्बरी नेताओंमेंसे पण्डितजी नहीं थे। इसीलिए उनकी दृष्टि हमेशा प्रजाकी सेवापर ही केन्द्रित रहती थी। इसी दृष्टिसे पंडितजी अधिवेशनोंमें अध्यक्ष या स्वागताध्यक्षका पद स्वीकार करते थे।

१९४२ के अन्तमें दक्षिण महाराष्ट्रमें रियासतोंकी जो राजनैतिक परिस्थिति निर्माण हो गई थी, उसपर विचार करने, अखिल राष्ट्रीय आन्दोलनका निरीक्षण करने, रियासतोंमें स्वराज्यकी स्थापना करनेके हेतु लोगोंको संघटित करनेके लिए रियासती प्रजा परिषद्का तेरहवां अधिवेशन करनेका निश्चय हुआ।

१३ दिसम्बर १९४२ में सांगलीके सम्मेलनमें निश्चित योजनाके अनुसार साबडे-समितिने अपने कामकी शुरुआत कर दी। उस समितिने स्वराज्यपद्धति, संघराज्य और सभी रियासतोंके बीचमें एक संयुक्त उच्च न्यायालय स्थापित करनेकी एक योजना तैय्यार की और उसे प्रकाशित भी किया। इस योजनाको साबडे समितिने सभी राजदरबारोंके सामने प्रस्तुत किया और उसपर अपनी सम्मति देनेकी भी प्रार्थना की। दिनांक ७।२।१९४३ को सांगली रियासती प्रजापरिषद्का अधिवेशन संगलवेंढमें सम्पन्न हुआ। उस अधिवेशनमें यह योजना सर्वसम्मतिसे पास हो गई। अखबारोंने भी इस योजनाका हार्दिक स्वागत किया और कुछ बहुमूल्य सलाह भी दिए। मद्रासके 'हिन्दु' दैनिकने इस योजनापर अपना मत देते हुए लिखा था—

The sabde committee plan is federal in character and unlike the political depart-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ment's hotch potch, is so designed as to take full account of the rights interests and obligations of all the parties affected-the rulers, the citizens and the states alike. (20-4-1943);

पर रियासती राजदरबारोंने इस योजनाका आदर नहीं किया। सावडे-समितिकी स्थापना एक सम्मेलनमें हुई थी। पर उस समितिका काम एक अधिक व्यापक संघटनाके सिपुर्द करनेके विचारसे दक्षिणी रियासतोंके प्रजापरिषद्‌का १३ वां अधिवेशन ता. ३।५।१९४३ को जमखिंडीमें पंडित सातवलेकरकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। यूं तो उसके अध्यक्ष श्री माधवराव अणे थे, पर वे ठीक समयपर पहुंच न सके, इसलिए पण्डितजीको ही अध्यक्ष बना दिया गया था। इस अधिवेशनमें रियासतोंके संयुक्तीकरणके प्रस्तावपर विचार होना था, इसलिए प्रायः सभी रियासतोंसे बहुत संख्यामें लोग आए थे। दक्षिणी रियासतोंमें कतिपय रियासतोंका भाग कन्नड प्रान्तमें होनेके कारण वे इस चिन्तामें थे कि इस संयुक्तीकरणके बाद उनपर न जाने क्या परिणाम हो। अतः उनमें एक पक्ष ऐसा भी था जो यह चाहता था कि ये रियासतें जैसी हैं वैसी ही रहें। इस कारण जमखिंडीके अधिवेशनमें राजनैतिक दृष्ट्या वातावरण बडा गरम हो गया था। सावडे-समितिके सामने प्रश्न यह था कि जबतक छोटी छोटी अनेक रियासतें हैं, तबतक उनका कार्य लोकहितकी दृष्टिसे किस प्रकार चल सकेगा? समितिके अध्यक्ष श्री अ. वा. सावडेने इस अधिवेशनमें यह स्पष्ट कर दिया था कि भाषावार प्रान्तरचनाके समय मराठी और कन्नड प्रदेशोंके उन उन रियासतोंमें समाविष्ट होनेमें इस समितिको कोई आपत्ति नहीं है। इसे स्पष्टीकरणके कारण अधिवेशनका वह सन्तप्त वातावरण बहुत कुछ अंशोंमें ठण्डा पड गया।

इस अधिवेशनमें पंडितजीने अध्यक्षका स्थान स्वीकार किया। शामके ७ बजे तक विषयनियामक समितिका काम चलता रहा, यह काम रातके साढे ग्यारह बजे समाप्त हुआ। इसके बाद रातके ११॥ बजे सर परशुरामभाऊ नाट्यगृहमें खुला अधिवेशन सम्पन्न हुआ। सभा स्थानमें करीब १००० प्रतिनिधि और दर्शक उपस्थित थे। नाट्यगृहके बाहर भी करीब २००० मनुष्य खडे हुए थे। ध्वनि क्षेपकयंत्रोंके कारण सभी आसानीसे भाषण सुन सकते थे। एक तो रातका समय, ऊपरसे मनोनीत अध्यक्ष लोकनायक अणेकी अनुपस्थिति, इन दोनों बातोंके कारण अधिवेशनका वातावरण थोडा निरुत्साहित सा हो गया था। इसपर भी इतना जनसमुदाय उपस्थित था। सांगली, तेरदाल, रबकवी, शाहपुर, शिरहट्टी, मंगलवेढे, कवठे, उगार, जमखिंडी, कुन्दगोल, बनहट्टी, सांवशी, हुन्नूर, कोल्हापुर, इचलकरंजी, तोरगल, मलकापुर, अक्कलकोट, कुरुन्दवाड, तिकोटा, औंध, किर्लोस्करवाडी, गुणदाळ, आटपाडी, बिद्री, फलटण, सावंतवाडी, भोर, मुधोळ, महालिंगपुर, लोकापुर, रामदुर्ग, बुधगांव, जत, मीरज, मालगांव, ग्वालियर, इन्दौर, बम्बई, पूना, बीजापुर, बेलगांव आदि रियासतोंके अनेक गांवोंसे लोग आए थे। दक्षिणी रियासतोंके १५ रियासतोंसे कार्यकर्ता इस अधिवेशनमें उपस्थित होनेके लिए आए थे।

पंडित सातवलेकरजीको अध्यक्षपद ग्रहण करनेके लिए निमंत्रित करते हुए श्री लाहोरीने नपेतुले शब्दोंमें पण्डितजीका संक्षिप्त परिचय दिया।

श्री लाहोरीके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए श्री विठ्ठलराव जोशीने कहा कि- "यद्यपि पंडितजी वैदिक वाङ्मयके महान् विद्वान् हैं, तथापि राजनीतिके क्षेत्रमें भी वे उतने ही महान् हैं। ।पंडितजीने वैदिक वाङ्मयको प्रकाशित करनेके लिए अनेक कष्ट सहे हैं। राजनैतिक वाङ्मयके प्रकाशन क्षेत्रमें भी पंडितजी अग्रगामी हैं।"

"औंध जानेवाला प्रत्येक व्यक्ति स्वाध्यायमण्डल संस्थाका दर्शन करता ही है। स्वराज्यके विषयमें अनुभवी पंडितजी आज अपने अनुभवोंका फायदा हम राजनैतिक कार्यकर्ताओंको प्रदान करेंगे। लोकनायक अणेकी कमी किन्हीं अंशोंमें पण्डितजीकी उपस्थिति पूरा कर देगी। स्वराज्यके विषयमें पंडित सातवलेकरका उत्साह अवर्णनीय है। अतः मैं पंडितजीसे प्रार्थना करूंगा कि वे अध्यक्षका स्थान ग्रहण करके हमें उपकृत करें"

इतर छिटपुट कार्यक्रमोंके होनेके बाद पंडितजीने अध्यक्षपदसे बडा ही प्रभावशाली भाषण दिया।

अध्यक्ष पं. श्री. दा. सातवलेकरका भाषण

सभ्य स्त्री पुरुषो!

हम यहां इसलिए एकत्रित हुए हैं कि हम एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयके बारेमें दक्षिणी रियासतकी प्रजाओंका

×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनमत लेकर कुछ निर्णय कर सकें। आजके अधिवेशनके मनोनीत अध्यक्ष श्री माधवराव अणे रेल्वेकी असुविधाके कारण न आनेके, यह हमारा दुर्भाग्य ही है। उनकी जगहपर आपने मुझे बिठाया है, पर उनकी जगहपर बैठकर उनका काम करनेमें मुझे संकोच प्रतीत हो रहा है। लोकनायक जिसप्रकार वाइसरायसे लेकर राजाओंतक अबाधित गतिसे पहुंच सकते हैं, वैसी अप्रतिहत गति मुझमें नहीं है। उनकी सी योग्यता मुझमें नहीं है। पर स्वराज्यप्राप्तिके लिए किये जानेवाले कर्तव्य किसी भी व्यक्तिकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। अतः व्यक्तिके कारण उन कर्तव्योंके करनेमें किसी प्रकारका प्रतिबन्धका आना अभीष्ट नहीं है। इसी कारण हमारे द्वारा एक बार शुरु किया गया बीचमें ही रुक न जाए, एतदर्थ आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके आगे आया हूँ, और हमेशा मैं ऐसा ही प्रयत्न करूंगा कि जिससे आपकी आज्ञा अनुसार चलकर जनता जनार्दनकी सेवा कर सकूं।

क्रान्तिका समय

आजका समय क्रान्तिका समय है। सभी संसारमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। अतः ऐसे समयमें यदि कोई सर्वथा निर्लिप्त और तटस्थ रहना चाहे, तो वह उसके लिए असम्भव ही होगा। कालका प्रवाह बडे वेगसे बह रहा है, उसके साथ हमें भी चलना होगा। यदि तुम प्रयत्न करते हुए आगे बढोगे तो उन्नति कर सकोगे, यदि पिछडे रह जाओगे तो अवनतिके गड्डेमें गिरकर नष्ट हो जाओगे और यदि अब जहां हो, वहीं पर रहनेका प्रयत्न करोगे, तो सड जाओगे। यदि तुम उन्नति करना चाहते हो तो समयका महत्त्व जानकर योग्य मार्गसे प्रगति करनी ही पडेगी। हम जो यहां एकत्रित हुए हैं, वह इसलिए नहीं कि हम जहां हैं, वहीं रहकर सड जायें अथवा पिछडकर नष्ट हो जाएं। अपितु हम यहां इस बातपर विचार करनेके लिए एकत्रित हुए हैं कि हम अपनी उन्नति शीघ्रसे शीघ्र किस प्रकार कर सकते हैं। हम सबका यह निश्चय है कि हम स्वराज्यका निर्णय किए बिना यहांसे उठेंगे नहीं।

हमारा दृढ निश्चय

इस समय रातके साढे बारह बज गए हैं, सबकी आंखोंपर नींदका अधिकार हो गया है, आपके प्रिय और मनोनीत अध्यक्ष श्री अणे नहीं आसके हैं, इस प्रकारकी अनेक अडचनें आपत्तियां आनेपर भी आप सब यहां एक दृढनिश्चयसे बैठे हुए हैं, इससे यह स्पष्ट है कि आप सब स्वराज्यप्राप्तिके अभिलाषी हैं। इस अधिवेशनके लिए जमखिण्डीके लोगोंने जितना कष्ट सहा है, उतना और किसी अधिवेशनके लिए लोगोंने नहीं सहा। आप किसी भी संकटकी परवाह न करके स्वराज्यके लिए किसी भी कष्टको सहनेके लिए तत्पर हैं, यह देखकर मैं आपसे कह सकता हूँ कि अब स्वराज्य हमसे दूर नहीं है।

परमात्मा इन संकटोंके द्वारा अपने भक्तोंकी परीक्षा करता है। यदि उन परीक्षामें हम उत्तीर्ण हो जायेंगे, तो निस्सन्देह हम अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेंगे। पर यदि हम इन संकटोंसे कतरायेंगे, तो हमसे सुख दूर होता चला जाएगा।

सभी रियासतोंमें स्वराज्यकी स्थापना हो और ऐसी स्वराज्यशासित रियासतोंका एक महाराज्य हो यही एकमात्र हमारी अभिलाषा है। इस काममें हमारी मदद करनेके लिए लोकनायक अणे दौडे तो सही, पर रेलगाडीके पटरी परसे उतर जानेके कारण वे उधर संकटमें पडे हुए हैं और इधर हम उनकी प्रतीक्षामें बैठे हुए हैं। इस काममें हमपर जो संकट आ रहे हैं, वह हमारी परीक्षा ही है। इस प्रकार अथवा इसकी अपेक्षा भी दुःखप्रद आपत्तियां हमें सहनी पडेंगी। फिर भी उसकी परवाह न करते हुए हमें अपने स्वराज्यप्राप्तिके ध्रुव तारेकी तरफ बढते ही जाना होगा, उसकी प्राप्तिके लिए सुखदुःखकी परवाह न करते हुए अपने प्राण भी समर्पित करनेके लिए हमें तैय्यार रहना होगा। तभी स्वराज्यकी प्राप्ति हो सकेगी।

रियासतोंका भविष्य

दक्षिणी रियासतोंके भविष्यके बारेमें आज बडे लोगोंके मन भी साशंक दृष्टिगोचर होते हैं। उन सभी रियासतोंकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो चुकी है कि भविष्यमें इन रियासतोंका अस्तित्व भी खतरेमें पड गया है। अतः हमें ऐसी कुछ योजनायें बनानी चाहिए ताकि ये रियासतें स्वराज्यके सरल मार्गसे चलते हुए इस आर्थिक परिस्थितिका मुकाबला करें और जनताका समर्थन प्राप्त करके सम्मानपूर्वक जीवित रहनेका प्रयत्न करें। इसके बावजूद हम यह भी चाहते हैं कि इन योजनाओंके बारेमें हम जनमत भी प्राप्त करें।

जमखंडीके भाग्य

सभी दक्षिणी रियासतोंके भविष्यका प्रश्न एक अत्यन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। उसी प्रश्नपर विचार करनेके लिए यह सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है। यह प्रसंग रियासतोंके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंसे लिखा जाएगा। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर निर्णय करनेके लिए जमखंडीको ही चुना गया, यह जमखंडीका भाग्य है। प्रथम यह परिषद् मीरजमें सम्पन्न होनेवाली थी, पर वहांकी सांप्रतिक राजनैतिक परिस्थिति एवं अन्य भी अनपेक्षित कारणोंकी वजहसे परिषद्का स्थान बदल दिया गया और आज हम मीरजके बदले जमखंडीमें एकत्रित हुए हैं। यह एक तरहसे जमखंडीका सम्मान ही है। यह एक सुवर्णसंधि है, जो आज हमें प्राप्त हुई है। अतः आइए, हम आपसी झगडोंको भूलकर इस सुनहरे मौकेसे भरपूर फायदा उठायें।

हमारी योजनाका एक मुख्यसूत्र यह है कि प्रत्येक रियासत-में पूर्ण स्वराज्य स्थापित हो और सभी रियासतें परस्पर संघटित होकर एक महान् राज्यका रूप धारण कर लें। यही हमारा ध्येय है और हमारा यह दृढ संकल्प है कि जबतक हम इस ध्येयको प्राप्त नहीं कर लेते, तबतक हमारे प्रयत्न अविरत रूपसे चलते ही रहेंगे।

दक्षिणी रियासतोंके भविष्यके बारेमें निर्णय करके उसे एक निश्चित मार्गमें प्रेरित करनेका मान जमखंडीको मिला है। इसका यह मान इससे दूसरा कोई छीन नहीं सकता। इस महत्त्वपूर्ण परिषद्के अध्यक्षके रूपमें प्रजाकी सेवा करनेका आप लोगोंने मुझे अवसर प्रदान किया। यह मान मैं अपना न समझकर औंध रियासतका ही समझता हूँ। क्योंकि औंध रियासतने ही सर्वप्रथम राज्यमें स्वराज्यपद्धतिकी स्थापना करके अन्योंको भी मार्ग दिखाया है। यही कारण है कि आपने अध्यक्षके इस महत्त्वपूर्ण पदपर प्रतिष्ठित किया है।

संविधानकी रचना

इंग्लैण्डमें इस स्वराज्यके संविधानका निर्माण आज कई वर्षोंसे हो रहा है। संविधान या कानून कागजपर भले ही कितने भी अच्छे क्यों न हों, पर उनका प्रयोग जितना ज्यादा किया किया जाएगा, उतने ही उसके फायदे हमें मिलते जाएंगे। इन कानूनोंके उपयोग करते समय जो अनुभव मिलते हैं, उन अनुभवोंका फायदा उन संविधानोंको सुधारनेमें बहुत होता है। यदि किसी घरकी सभ्यता देखनी हो तो वह घर बांध कर ही देखी जा सकती है। उसी प्रकार यदि किसी संविधानकी उपयोगिताका पता लगाना हो, तो प्रथम उसे क्रियान्वित करना चाहिए। जो उसे क्रियान्वित करके उससे प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त नहीं करते, वे यह भी नहीं जान सकते कि अमुक संविधानमें क्या कमी है और वह कमी किस प्रकार दूर की जा सकती है।

बुद्धिमान् राजनीतिज्ञोंको चाहिए कि वे आगे पीछेका विचार करके उत्तमसे उत्तम कानून बनायें और उन कानूनोंको कागजी घुडदौड तक ही सीमित न रखकर क्रियान्वित करें, उस दरम्यान उन्हें उन कानूनोंमें जो कमियां दिखाई पडें, उन्हें दूर करके जनताकी भलाई करें। इसप्रकार दस पांच वर्षोंमें संविधानका जो रूप सामने आएगा, वह सर्वोत्तम संविधान होगा।

सावधानीकी आवश्यकता

स्वराज्यके कानूनोंकी रचना करनेमें ही उद्देश्यकी पूर्ति मान लेना एक बडी भारी भूल होगी। इतिहास जाननेवाले इस बात-को अच्छी तरहसे जानते हैं कि आयरलैंडमें पूर्ण स्वराज्य स्थापित हो चुका था। पर वहांके कतिपय लोकप्रतिनिधियोंने रिश्वत लेकर यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि हमें एक पृथक् स्वराज्यकी जरूरत नहीं है, हमारे लिए तो बस इतना ही पर्याप्त है कि हमारे कुछ प्रतिनिधि इंग्लैंडकी पार्लियामेंटके सदस्य हो जाएं। यह प्रस्ताव पास करवाकर उन्होंने उस देशको अपने ही हाथोंसे पारतंत्र्यकी आगमें झोंक दिया। उस स्वराज्यको पुनः प्राप्त करनेके लिए आयरलैण्डको १०० वर्षों तक जूझना पडा।

इस परसे एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि भले ही स्वराज्य प्राप्त हो जाए पर उसको और अधिक विकसित करनेके लिए योग्य मनुष्योंकी आवश्यकता होती ही है। अन्यथा रिश्वतखोर बीचमें आकर उस राज्यका सत्यानाश कर डालेंगे। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि स्वराज्यका सुख जनताको प्राप्त करानेके लिए नेताओंको तत्त्वनिष्ठा और त्यागवृत्तिसे आगे आना चाहिए। इस स्वराज्यको प्राप्त करने और उसके लिए सब कुछ न्योछावर करनेके इरादेसे ही यहां आप सब एकत्रित हुए हैं, ऐसा मैं समझता हूँ।

विदेशीराज्य

कुछ लोगोंका मत यह है कि स्वराज्यकी कल्पना विदेशी है। अतः इस स्वराज्यकी कल्पना योरोपसे लाकर ही भारतको उपहाररूपमें देनी पडेगी। पर मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि यह उनका कथन सर्वथा गलत है, यदि आपमेंसे कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस मतका समर्थक हो, तो उससे भी मेरी यही प्रार्थना है कि वह अपने इस मतको सुधारले। हम जिस स्वराज्यकी उपासना करना चाहते हैं, वह यहीं इस भारतभूमिकी उपज है। हम उसीको विकसित करना चाहते हैं। अपना स्वराज्य हमें स्वयं ही विकसित करना होगा, कोई दूसरा या तीसरा आदमी उसका विकास करने नहीं आएगा। दूसरोंके द्वारा विकसित किया हुआ राज्य परराज्य ही कहलाएगा, स्वराज्य नहीं।

प्रत्येक देशकी परिस्थिति अलग अलग होती है। पौर्वात्य और पाश्चात्य देशवासियोंके रहन सहनमें बड़ा अन्तर होता है। यह अन्तर उनके धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक आचार विचारोंमें व्यक्त होता है, जो स्वाभाविक ही है। भारत अपनी संस्कृति, धर्म एवं उसके ध्येयके लिए हजारों वर्षोंसे प्रसिद्ध है। अतः हमें जिस स्वराज्यकी स्थापना करनी है, वह हमारे अन्तःस्फूर्तिसे निकला हुआ है और उसीसे वह विकसित भी हो। दूसरोंकी नकल यदि हम करेंगे, तो वह हमारा कार्य-नकलची बन्दरके कार्यके समान ही होगा। अतः मेरा यह कहना है कि आज हम जो संविधान बनायें वह साधारण और युक्तियुक्त हो। फिर हम उसे क्रियान्वित करके उत्तरोत्तर उसकी वृद्धि करते हुए सुधारते रहेंगे। वे सुधार यदि हम अपने अनुकूल करते जायेंगे, तो निश्चयपूर्वक हमें उस संविधान से भरपूर फायदा होगा।

ऋषियोंकी घोषणा

अपने प्राचीन वाङ्मयमें ऋषियोंने स्वराज्यके बारेमें विचार करके स्वराज्यकी रूपरेखा भी निश्चित की थी।

(१) स विशोऽनु व्यचलत्। तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा च अनुव्यचलन्। (अथर्ववेद)

(२) सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।

येना संगच्छा उप मा शिक्षात् चारुः वदानि पितरः संगतेषु ॥ (अथर्ववेद)

(३) राष्ट्री विशमत्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः। (शतपथ ब्राह्मण)

(१) जो प्रजाके अनुकूल रहता है, उसी राजाको सभा, समिति, सेना और कोषकी अनुकूलता प्राप्त होती है। (२) सभा और समिति ऐसे उत्तम राजाकी रक्षा करें और सभाके सभासद् राजाको उत्तम और योग्य सलाह देवें। (३) अनियंत्रित राजा प्रजाको खा जाता है, इसलिए ऐसा राजा प्रजाके लिए घातक सिद्ध होता है।

ये राजनैतिक सिद्धान्त ऋषियोंने वैदिककालमें निश्चित किए थे। जब राजा प्रजाके अनुकूल व्यवहार करता है, उसी हालतमें लोकसभा, लोकसमिति, सेना और कोष उसके साथ अनुकूलतासे व्यवहार करते हैं। सेना और कोषके बलके आधार पर राजाका अत्याचारी होना संभव है। पर इन दोनों पर यदि प्रजाका अधिकार हो, तो राजा कभी भी अत्याचारी नहीं बन सकता। एक स्वतंत्र लोकसभाकी स्थापना हो और उसके अधीन कोष और सेना रहे। और वह लोकसभा राजाको उत्तम योग्य व्यवहारकी शिक्षा दे। राज्यमें उत्तम व्यवस्था और प्रजाजनोंके सुख पर राजाका ध्यान रहे। इसप्रकार लोकसभाके अनुकूल होकर शासन करनेवाला राजा राष्ट्रका भूषण होता है। अनियंत्रित राजा प्रजाओंका घातक होता है।

स्वराज्यका आधार

ऋषियोंने कमसेकम पांच हजार वर्ष पूर्व ये स्वराज्य विषयक सिद्धान्त निश्चित किए थे। इन सिद्धान्तोंमें ग्राम-पंचायतको स्वराज्यका आधार बताया गया है। ऊपरके मंत्रमें आया हुआ "सभा" शब्द ग्रामसभाका परिचायक है। और "समिति" राष्ट्रसभा है। प्राचीनकालसे ग्रामपंचायतको स्वराज्यका एक मूलभूत घटक माना जाता रहा है। बौद्धकालके अन्ततक प्रत्येक गांवमें पंचायतें थीं और वे बडी उत्तमतासे कार्य भी करती थीं। मुसलमानी और मराठोंके शासनमें भी ग्रामपंचायतें अपना कार्य करती रहीं। पर अंग्रेजोंके शासनमें उन्हें जानबूझकर समाप्त कर दिया गया। वैदिक कालसे लेकर ग्रामपंचायतके संस्कार हम पर पडते रहे हैं। प्रायः सभी पौर्वात्य देशोंमें उनमें भी विशेषकर कृषिप्रधान राष्ट्रोंमें ग्रामपंचायत वहांकी प्रजाओंके जीवनका एक भाग हो गई थी। यह तथ्य हम अनादिकालसे देखते आ रहे हैं। आधुनिक सुधारके युगमें नई व्यवस्थाको अमलमें लानेवाले रूसने भी "सोवियट विलेज रिपब्लिक्स" के नामसे संस्थायें कायम की हैं।

उद्योग प्रधान देश

योरोप खण्डका अधिकांश भाग उद्योगोंसे व्याप्त है इसी कारण उस खण्डमें औद्योगिक संघका बहुत प्रभाव है। उनके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वयंके दैनिक अखबार प्रकाशित होते हैं, इसलिए यह संघ उस खण्डमें बहुत प्रबल हो गया है। यही कारण है कि उन यूरोपवासियोंका सामाजिक और राजनैतिक जीवन बिल्कुल भिन्न है। इसी वजहसे उन्होंने अपनी राजनैतिक संस्थायें बिल्कुल ही अलग आधार पर बनाई हैं, जो उनके जीवनक्रमके योग्य ही हैं। पर हमारे राष्ट्रमें सात लाख गांवोंमें रहनेवाला कृषकोंका वर्ग यूरोप खण्डके जीवनसे पूर्णतया अपरिचित है। अतः यदि हम यूरोपकी नकल करके अपने भी स्वराज्यकी रूपरेखा उसी तरह बनायेंगे, तो वह रूपरेखा हमारे जीवनसे मेल नहीं खा सकेगी। इसीलिए हमारा यह कहना है हमें अपने स्वराज्यकी रूपरेखा स्वयं ही अपने परिस्थितिके अनुकूल तैय्यार करनी होगी। वह रूपरेखा हमारी उन्नतिके साथ ही हमारी आवश्यकताओंके अनुसार विस्तृत होती जाए"।

इस परसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमारे स्वराज्यका आधार ग्रामपंचायत ही है। ग्रामपंचायतकी और गांवकी निस्स्वार्थ सेवा करनेवाले ही समिति या लोकसभाके लिए चुनकर भेजे जायें। यही हमारे स्वराज्यकी रूपरेखा है और इस रूपरेखासे हम अच्छी तरह परिचित हैं, इसलिए यह हमारे लिए उन्नतिकारक ही होगी।

प्रत्येक गांवमें एक ग्रामसभा हो। उसे गांवके कारभार चलानेके सभी अधिकार प्रदान किए जाएं। इस ग्रामसभाके लिए चुने गए सदस्य गांवकी सेवा करें। इस प्रकार सभी गांव स्वयंशासित हों।

स्वराज्यका शिक्षण

कल्पना कीजिए कि किसी एक रियासतमें सौ गांव हैं और वे सभी गांव ग्रामपंचायतसे शासित होते हैं। हरएक ग्रामसभामें यदि सात सात सदस्य भी हों, तो सौ गांवोंमें ऐसे सदस्योंकी कुल संख्या सात सौ होगी। ये सभी सदस्य राष्ट्रसेवाके व्रती हों। ग्रामसेवा करते करते काम करनेका अभ्यास भी हो जाएगा। पानीमें उतरे बिना तैरना कैसे आ सकता है? हो सकता है कि प्रथम प्रथम ये पंच गलतियां भी करें, पर काम करनेके साथ ही साथ उनका मार्ग भी प्रशस्त होता जाएगा और आज गलतियां करनेवाले वे पंच कल उत्तम काम करनेमें भी प्रवीण हो जाएंगे। ग्रामपंचायत राष्ट्रीय शिक्षाकी शाला है। इन पंचायतोंमें प्रात्यक्षिकरूपसे राजकीय शिक्षा मिलती है। इस प्रकार अनुभवसे उनकी शासनकला उत्तरोत्तर सुधरती ही जाएगी।

इस प्रकार अनुभवोंसे फायदा उठानेवाले बुद्धिमान् पंच ही तालुकासमिति, प्रान्तसमिति और राष्ट्रसभामें चुनकर जाते हैं। अनुभवशील मनुष्य ही प्रगतिशील हो सकता है और वही अपने अनुभवोंका फायदा उठाकर आगे बढता जाता है और इस प्रकार वह एक दिन राजा और मंत्री भी हो सकता है। छोटेसे लेकर बडेसे बडे कामोंके बारेमें इसे सब अनुभव रहता है, इसलिए वह हर कामके गुणदोषको अच्छी तरह जानता है। इसलिए सभी रियासतोंमें ग्रामपंचायतों और प्रान्तसमितियोंका एक जाल फैला देना चाहिए, तभी उनमें हमारे परिस्थितिके अनुकूल स्वराज्य स्थापित हो सकेगा।

इसके विपरीत यदि चुनावोंके द्वारा चुनकर कोई ऐसा व्यक्ति आया, कि जिसे ग्रामोंके बारेमें रत्तीभर भी जानकारी नहीं, भले ही वह कितना ही बडा नेता क्यों न हो, वह अपनी प्रजाको सुखी नहीं कर सकता। ग्रामीण जीवनसे समरस हुआ हुआ एक सामान्य व्यक्ति गांवोंकी जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी उन्नति गांवके जीवनसे सर्वथा अपरिचित एक महान् नेता भी नहीं कर सकता। इसीलिए मेरा यह आग्रह है कि अपने ग्रामोंमें स्थापित किए जानेवाले स्वराज्यकी रूपरेखा हम ही निश्चित करें और उसे सतत विस्तृत करते रहें।

एकबार चुनाव हो गए और जनताने अपने प्रतिनिधि कौंसिलमें भेज दिए, फिर उसके बाद न जनताका ही कुछ काम रह जाता है और उसके द्वारा चुनकर भेजे हुए प्रतिनिधि ही अपने मतदारोंकी तरफ मुंह करते हैं। फिर जब चुनावके दिन नजदीक आते हैं, तब फिर इन प्रतिनिधियोंमें जनता जनार्दनकी सेवाभावनाकी लहर उठती है और वे अपने मतदारोंको मिथ्या आश्वासनोंसे रिझाकर फिर चुनावमें सफलता प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। इतना ही स्वराज्यका सूत्र उन्हें मालूम है। वे इतना भी नहीं जानते कि ग्रामपंचायतका क्या महत्व है और इन पंचायतोंके द्वारा जनताको राजनैतिक शिक्षा कैसे दी जा सकती है। यह एक महान् खेदका विषय है। इन उपर्युक्त दोनों योजनाओंमें कौनसी योजना राष्ट्रके लिए उपयुक्त एवं हितकारक है, यह थोडे ही वर्षोंमें स्पष्ट हो जाएगा। पर हम अपने अनुभवोंके आधारपर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतना अवश्य कह सकते हैं कि ग्रामपंचायतके आधारभित्ति पर खडा किया गया स्वराज्य ही राष्ट्रका विकासक होगा और वही हितकारी होगा।

जनसेवाका अवसर

ग्रामपंचायतपर आधारित स्वराज्यमें बहुतोंको बहुतसा काम करना पडता है। जब कि चुनाव जीतकर कौंसिलमें जानेपर उतना काम नहीं रहता। पर यदि स्वराज्यका अर्थ "सम्पत्तिका निर्माण करनेवाली जनताकी सेवा करके उस जनताका सुख बढाना" ही किया जाए तो इसके लिए बहुजन प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही जनतामें राष्ट्रीय दृष्टिको विकसित करना भी आवश्यक है।

स्वराज्यसे निर्भयता

सच्चा स्वराज्य यदि प्राप्त हो जाए और उस स्वराज्यका उपयोग करना भी आजाए, तो फिर यह चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं रहती कि राज्यपर कौन अधिष्ठित है। राज्यशासन यदि लोकप्रिय मंत्रियोंके अधीन हो और वे मंत्री भी लोकमतकी उपेक्षा करनेवाले न हों, तो राजा चाहे कोई भी या कैसा भी हो, वह प्रजाको दुःख देनेमें समर्थ नहीं हो सकता। रियासतके सभी अधिकारी अपना अपना कर्तव्य आरामसे निभाते जाएं। स्वराज्यशासनके तत्त्वको जो जानते हैं वे राजाओंको नष्ट करनेमें अपनी शक्तिका अपव्यय न करके स्वराज्यप्राप्तिमें ही अपनी शक्तिका सदुपयोग करेंगे। इस स्वराज्यप्राप्तिसे मनुष्यमें निर्भयता आती है। आज जो रियासतें स्वराज्यका नाम सुनकर ही बिदकती है, मुझे निश्चय है कि वे ही रियासतें समय आनेपर इस स्वराज्यका दिल खोलकर स्वागत करेंगी।

यह ठीक है कि आज जो हमारे सामने योजना है, उसमें कुछ कमियां हैं। पर यह अपूर्णता जानबूझकर रखी गई है, ऐसा प्रतीत होता है। आज जो स्वराज्यकी योजना हमारे सामने है, उस स्वराज्य-शृंखलाकी तीन कडियां हैं। (१) साम्राज्य सरकार; (२) रियासतदार और (३) प्रजा। इन तीनोंमें प्रजाकी कडी इतर दो कडियोंकी अपेक्षा कमजोर है। इसको ध्यानमें रखकर ही स्वराज्यकी योजना निश्चित करनेवालोंने यह अपूर्णता इसी दृष्टिसे रखी प्रतीत होती है कि इस स्वराज्यपर इतर दो कडियोंकी तरफसे कोई आंच न आ पाए। इसी दृष्टिसे कोग इस योजनाकी तरफ देखें। विकार या केवल दोष ढूंढनेकी दृष्टिसे इस योजनापर नजर न डालें।

सावंतसमितिने जो योजना तैय्यार की है, वह किसी विशेष उद्देश्यसे ही तैय्यार की है। उस योजनामें इस प्रकार की एक प्रतिबन्धक योजना भी है कि जिससे आपसी झगडे रोके जा सकें। हमें पहले यह देख लेना चाहिए कि जो कायदे या कानून लेकर हम राजाओंके पास जाना चाहते हैं, उसमें क्या इस बातकी भी सुविधा है कि राजाओंको पेन्शन दी जा सके? आज जो प्रस्तुत है, वह एक ऐसी योजना है कि जिसे तुम राजाओंके सामने भी प्रस्तुत कर सकते हो और यदि राजा उसके बारेमें सरकारसे सलाहमशविरा भी लेना चाहें, तो सरकार भी उस योजनाके विरुद्ध अपनी राय नहीं दे सकती। इन रियासतोंका एकबार संयुक्तीकरण हो जाए, फिर उन कानूनोंको क्रियान्वित करते करते जैसे जैसे प्रजाकी शक्ति बढती जाएगी, वैसे वैसे हमारे अधिकारोंमें भी वृद्धि होती जाएगी। इस प्रकार इन संयुक्त रियासतोंमें स्वराज्य-शासनकी स्थापना की जा सकेगी। इस बातपर इस सावंत समितिको पूरा आत्मविश्वास है। इसी दृष्टिसे हम सभी प्रतिनिधि इस योजनाकी तरफ देखें।

आत्मसमर्पण

किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियोंके कारण यह बडी भारी जिम्मेदारीका काम मैंने सम्हाला है। पर यह केवल इस दृष्टिसे नहीं कि मुझे मान-सम्मान प्राप्त हो। मैं सम्मानका अभिलाषी नहीं हूँ। अपितु इसीलिए इस पदको मैंने स्वीकार किया है कि मैं प्रजाओंकी सेवा कर सकूं। मेरी अध्यक्षतामें आप सबने स्वराज्य-स्थापना और रियासतोंके एकत्रीकरणरूप वृक्षका आरोपण किया है। इसका वास्तविक यश आपको ही है, मैं तो केवल निमित्तमात्र ही हूँ।

मेरे मनमें एक बडी भारी अभिलाषा है कि हमारी योजनाके अनुसार स्वराज्यकी स्थापना और उसके द्वारा हम प्रजाओंकी सर्वांगीण उन्नति करें। इस अभिलाषाको आपकी मददसे क्रियान्वित करनेका सुअवसर आज मुझे प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस स्वराज्य स्थापनाके प्रयत्नमें यदि मुझे स्वयंको भी समर्पित कर देना पडे, तो मैं स्वयंको कृतकृत्य समझूंगा। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरा जीवन इसी पुनीत कार्यके लिए समर्पित हो और इस प्रकार मेरा जीवन एक पवित्र जीवन बने।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अध्यक्षीय भाषणके बाद कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत हुए जो पास भी हुए। इसके बाद कुछ विचारकोंने संघराज्यके बारेमें कुछ सुधार भी प्रस्तुत किए। इन सब प्रस्तावों पर विचार करनेके लिए और साबडे समितिको विस्तृत करनेके लिए निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किए गए– (१) प्रत्येक रियासतोंमें जल्दीसे जल्दी स्वराज्य पद्धतिकी स्थापना की जाए। (२) साबडे समितिने दक्षिणी रियासतोंका एक संयुक्त रियासत संघ योजनाकी जो रूपरेखा तैय्यार की है, उसमें अनेक सुधारोंकी आवश्यकता प्रतीत होती है। इस रूपरेखामें आवश्यक सुधारोंका करके उसे परिपूर्ण बनानेके लिए इस समितिमें भास्कररावं मराठे [मिरज] वि. अ. मसूरकर [मुधोळ] हणमंतराव कौजलगी और हब्बू [बीजापुर] और बी. एन. दातार [बेलगांव] को सदस्यके रूपमें नियुक्त किया जाता है साथ ही इस समितिको यह भी अधिकार प्रदान किया जाता है कि वह आवश्यकतानुसार अन्य सदस्योंकी भी नियुक्ति करे। इस समितिके लिए यह अनिवार्य होगा कि वह चार महिनोंमें अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दे। इसके अलावा फेडरेशनके एक भागके रूपमें सभी दक्षिणी रियासतोंका एक संयुक्त उच्च न्यायालय और कतिपय विभाग भी संयुक्त हों। इसके लिए तत्काल प्रयत्न प्रारंभ कर दिए जायें। (३) सांगली, जमखिण्डी, औंध और फलटण इन चार रियासतोंमें प्रजातंत्रीय विभाग लोकनियुक्त-मंत्रियोंके शासनमें हैं, अतः ये मंत्री एक महीनेके अन्दर ही अन्दर इस बातकी सूचना दे दें कि इस प्रकारके प्रजातंत्रीय विभागोंके कार्य संचालनमें राजाओंकी सम्मति है या नहीं।

जमखिंडीमें सम्पन्न यह अधिवेशन अनेक दृष्टियोंसे बडा ही महत्त्वपूर्ण साबित हुआ और एक निश्चित दिशामें अग्रसर होनेके लिए बडा ही सहायक सिद्ध हुआ। पर इन सबका श्रेय पं. सातवलेकर और अनन्तराव साबडेको ही था। इस अधिवेशनमें कन्नड और मराठी भाषाभाषी प्रदेशोंका भाषावाद खुलकर सामने आ गया। इससे एक लाभ जरूर हुआ और वह यह कि नेता यह समझ गए कि इन प्रदेशोंमें आन्दोलन करते समय किस तरहके उपायोंका आसरा लिया जाए। ऐसी नाजुक परिस्थितिमें साबडेका मार्गप्रदर्शन बहुत मूल्यवान् सिद्ध हुआ। पर राजा इस मार्गप्रदर्शनका लाभ नहीं उठा पाये और इस प्रकार उन्होंने स्वयं अपने नाशको निमंत्रित किया। —(रियासतोंके विलीनीकरणकी कथा)

इस प्रकार विषयनियामक समितिके द्वारा स्वीकृत हुए हुए इन चारों प्रस्तावोंको खुले अधिवेशनमें प्रस्तुत किया गया, जो वहां भी स्वीकृत कर लिए गए। इसके बाद पं. सातवलेकरने अपने अध्यक्षीय भाषण दिया। उन्होंने कहा " कि अब सबेरा होता जा रहा है। आप सभी स्त्रीपुरुष इतने समयतक शान्तिसे बैठे रहे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे सामने बैठे हुए लोग परमात्मरूप ही हैं। इन जमखिंडीवासी जनता जनार्दनकी सेवा करनेका सुअवसर आपने मुझे प्रदान किया, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। अपनी मातृभाषाके प्रति जमखण्डीवासियोंका प्रेम अवर्णनीय है, तदर्थ मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। "

" मातृभाषाके प्रति सभीको इसी प्रकार प्रयत्नशील रहना चाहिए। रूसमें अनेकों भाषाभाषी लोग रहते हैं पर वे एक दूसरे पर कभी आक्रमण नहीं करते। स्वराज्यप्राप्त होते ही जमखण्डीमें भी वही दृश्य दिखाई देगा और उस स्वराज्यमें कोई किसीपर आक्रमण नहीं करेगा अथवा नहीं कर सकेगा। "

" मेरे कुछ मित्रोंने मुझसे पूछा कि अभी स्वराज्यप्राप्ति की इतनी जल्दी भी क्या है? यह सुनकर मुझे बडा दुःख हुआ। मैं तो इस विचारका व्यक्ति हूँ कि इस स्वराज्यप्राप्तिके लिए जितनी शीघ्रता की जाए उतना ही अच्छा है। इंग्लैण्ड, रूस, अमेरिका, जापान और जर्मनी आदि देशोंमें इस प्रकारके प्रयत्न हो चुके हैं। पर उन देशोंमें कोई भी ऐसा प्रश्न नहीं करता। क्योंकि देशभक्तोंका स्वराज्यप्राप्तिके लिए आतुर होना स्वाभाविक ही है। हां, जो मृतप्रायः लोग हैं उनके लिए हो सकता कि स्वराज्यप्राप्तिकी शीघ्रता न हो। पर उस प्रकारके मृतप्रायः यहां कोई नहीं है। इसीलिए हम सब स्वराज्यप्राप्तिके लिए आतुर हैं। इस शीघ्रतामें हो सकता है कि कुछ दोषपूर्ण कार्य भी हमसे हो जायें। स्वराज्यप्राप्तिके कार्योंमें गलतियां होनेकी संभावना अवश्य है, पर उन गलतियोंको सुधारना चाहिए। आज हमने स्वराज्यप्राप्तिकी इस योजनाको चार महीने आगे जो ढकेल दिया, उससे मैं यही समझता हूँ कि हमने अपने दोष सुधारके सुअवसरको अपने ही हाथोंसे खो दिया है। "

" आज यहां अनेक राजाओंके प्रतिनिधि खुले रूपमें उपस्थित हैं, तो कुछ गुप्तरूपमें। वे हमारे इस अधिवेशनका वृत्तान्त अपने राजाओं तक पहुंचायेंगे ही। हमने आज जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वराज्यप्राप्तिके प्रश्नको जो आगे ढकेल दिया है, उसका परिणाम हमें बादमें जाकर पता चलेगा । "

" गत चार महीनोंमें हुई हुई राजनैतिक परिस्थितियोंसे मैं पूर्णतया परिचित हूँ । उसके आधार पर ही मैं यह कहना चाहता हूँ कि स्वराज्यप्राप्तिके लिए जितनी शीघ्रता की जाए, उतना ही हमारे लिए उत्तम है । "

" सावडे समितिके द्वारा निश्चित किए गए कायदे व्यावहारिक हैं । इनमें प्रथम कायदा राजाओंके लिए अनुकूल है । इस कायदेकी रचना उस समितिने जानबूझकर की है । पर उसका दूसरा भाग रियासती जनताके लिए अनुकूल है । उसके अनुसार आपको स्वराज्यप्राप्त होगा । अतः उसपर आप ध्यान अवश्य दें । उस पर आपने ध्यान नहीं दिया और मराठी-कन्नडके झगडेमें पड गए, लिहाजा स्वराज्यप्राप्तिके प्रश्नको आगे ढकेल देना पडा । हम लोगोंमें वैमनस्य है, हमारी शक्ति संघटित न होकर विभक्त है, और इसका परिणाम हमें आगे चलकर भोगना ही पडेगा । खैर, जो हो गया वह हो गया । अब चार महीने बाद सावडेसमितिकी योजना सामने आते ही उसे क्रियान्वित करनेका प्रयत्न करें, यही मेरा कहना है । "

" समय बहुत हो गया है, तथापि आपने मेरी बातोंको शान्तिसे सुना, तदर्थ मैं आपका आभारी हूँ । "

अध्यक्ष पं. सातवलेकरके इस भाषणके बाद आभार प्रदर्शन एवं राष्ट्रगीतके साथ अधिवेशनकी समाप्ति हुई ।

यदि आप जानना चाहते हैं कि—

(१) प्राचीन भारतकी राज्यव्यवस्था कैसी थी ?

(२) उस समयकी समाजव्यवस्था कैसी थी ?

(३) उस समयकी अर्थव्यवस्था कैसी थी ?

तो अवश्य पढिये—

यदि आप राजनीतिज्ञ हैं, तो " राज्यव्यवस्था " का अध्ययन आपको अवश्य करना चाहिए ।

यदि आप समाजसुधारक हैं तो " समाजव्यवस्था " आपको अवश्य देखनी चाहिए ।

यदि आप अर्थशास्त्री हैं तो " अर्थव्यवस्था " पर अपनी नजर अवश्य रखनी पडेगी ।

और यदि आप अधिकारी हैं तो " प्रजाव्यवस्था " पर आपको ध्यान रखना पडेगा ।

पर ये समस्यायें अब आपके लिए समस्यायें ही नहीं रह गईं हैं । क्योंकि इन सबका समाधान आपको—

चाणक्य सूत्राणि

में मिल सकता है । सुप्रसिद्ध टीकाकार श्री रामावतारजी विद्याभास्कर की सुबोध एवं सरल हिन्दी टीकासे ६९० पृष्ठसंख्यावाले इस महान् और अमूल्य ग्रंथकी कीमत सिर्फ १२) (डा. व्य. पृथक्) है । शीघ्रता कीजिए । आज ही मंगवाए ।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, पोस्ट- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ', पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(८) जिस तरह परमात्मा निःस्वार्थभावसे सब संसारको चला रहा है उसी तरह वैद्यको भी होना चाहिये। जैसे महाभारतमें कहा है।

न त्वहं कामये राज्यं न सौख्यं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखततानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

अर्थात्– "मैं राज्य वा धनदौलत नहीं चाहता, न ही सुख चाहता हूँ, मोक्षतक भी नहीं चाहता परन्तु केवल इतना ही चाहता हूँ कि दुःखसे पीडित प्राणियोंके दुःखको दूर करूं।" ऐसी ही पवित्र भावनाओंसे प्रेरित होकर हमारे पूर्वज 'धन्वन्तरि' आदि वैद्य काम करते थे। वे असीम भगवद्भक्त थे। इसी तरह हमारे आजकलके वैद्योंको भी होना चाहिये। नहीं तो उनके अन्दर तेज कहांसे आवे? परमात्माकी स्तुति प्रार्थना उपासना ही मनुष्यके अन्दर तेज बढानेवाली चीज है। मनुष्य एक विद्युत् बैटरी (Storage Battery) (जिसमें विद्युत् शक्ति भरी जाती है) के समान है। जैसे उस बैटरीकी शक्तिका उपयोग होते होते वह निकम्मी हो जाती है पश्चात् उसमें एक विद्युदुत्पादक यंत्र डैनेमो (Dynamo) से शक्ति भरी जाती है। उसी तरह मनुष्यकी शक्ति भी काम करते करते कम हो जाती है, तब परमात्मा–रूपी अपरिमित–शक्ति-उत्पादक-डायनमासे शक्ति भरनी पडती है। आजकल इस विषयकी ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता, विरले ही ऐसे डाक्टर होते हैं, जो परमात्माका नाम लेते हैं। यह गलत है इसलिये ऐसा दुःख बढ रहा है। अतः एक वैद्यको उपर्युक्त रीतिसे भगवद्भक्त होना चाहिये। तब अपने अन्दर सब पवित्र भावनायें भरकर प्राणियोंके दुःख दूर कर सकता है।

(९) वह वैद्य धनके ऊपर दृष्टि न रखे। सादा जीवन उच्च विचारवाला हो। पूर्वकालमें वैद्यलोग आप्त माने जाते थे। गौतम न्यायदर्शनमें कहा है—

मंत्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।

इसकी व्याख्या न करते हुए केवल हमें जितना तात्पर्य चाहिये उतना ही बतायेंगे। आयुर्वेदके ज्ञाता आप्त माने जाते हैं। उनकी बात प्रमाण मानी जाती है। अब आप्त कौन है देखें। वात्स्यायन मुनिने अपने न्यायभाष्यमें जो कहा है उसका अनुवाद महर्षि दयानन्दजीके "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" से उद्धृत करते हैं। "जो कि साक्षात् सब पदार्थ विद्याको जाननेवाला, कपट आदि दोषोंसे रहित धर्मात्मा हैं, जो सदा सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी है, जिसको पूर्ण विद्यासे आत्मामें जिस प्रकारका ज्ञान है, उसके कहनेकी इच्छाकी प्रेरणासे सब मनुष्यों पर कृपादृष्टिसे सब सुख देनेके लिये सत्योपदेश करनेवाला है, और जो पृथ्वीसे लेकर परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थोंका यथावत् साक्षात्कार करना और उसीके अनुसार वर्तना ही आप्ति है. इस आप्तिसे जो युक्त हैं, उसको ही आप्त कहते हैं।" इतने उच्च आदर्शवाले जब वैद्य होंगे, तभी संसारमें प्रजा नीरोग होगी और शान्ति स्थापित होगी। मनुष्यका ध्येय जितना ऊँचा होगा उतना ही वह श्रेष्ठ बनेगा। और चारों तरफ भी सुख होगा।

यहां एक प्रश्न उठता है कि जब वैद्य या डाक्टर धनके ऊपर ध्यान नहीं देगा तो उसकी आजीविका कैसे चलेगी?

उत्तर– यह अत्यन्त मुख्य प्रश्न है। आजकलके वैद्योंके धन कमानेका ढंग बिलकुल गलत है। वैद्य अपनी वृत्तिको धन कमानेका साधन नहीं बनावे। इससे वह गिर जाता है। क्योंकि जब उसकी आमदनी रोगियोंके ऊपर निर्भर है, तो वह हमेशा यह सोचता रहेगा कि रोगी ज्यादा हो मुझे ज्यादा धन मिले। तब वैद्यकी पवित्र भावनायें सब खतम हो जायेंगी। इसीलिये वैद्यको औषधी बेचनी नहीं चाहिये। पूर्वकालमें चिकित्सा और विद्या इसी कारण बेची नहीं जाती थी। फिर उसकी आजीविका कैसे चले? उसकी आजीविकाके लिये सरकारको प्रबन्ध करना चाहिये। और प्रजा भी एक एक संस्था कायम करके उसके द्वारा ही वैद्यकी आजीविका चलाये। तथा प्रजा संस्थाकी सहायता करती रहे। पूर्वकालमें ऐसा ही होता था। यदि एक ग्राममें एक वैद्य रहा तो सारे ग्रामवासी मिलकर उसकी आजीविका सुचारुरूपसे चलाते। इस तरह वह लालची भी नहीं होता था और उसका सादा जीवन होता था। नगरमें, मोहल्लेवाले मिलकर उसकी आजीविका चलाते। वह अपनी प्रजाकी सेवामें ही निश्चिन्त होकर संलग्न रहता था। तब उसका मन पवित्र होता था। प्रजा नीरोग होकर सुखसे रहती थी। वैद्य हमेशा परमात्मासे प्रार्थना करता था कि मेरे रोगी सब नीरोग हों और सब सुखी रहें। ऐसा प्रबन्ध अब भी होना चाहिये। नहीं तो रोग बढता ही जायेगा। यह प्रबन्ध असम्भव नहीं है। यहां आक्षेप हो सकता है कि जब यह प्रबन्ध हो जायेगा तब वैद्य आलसी हो जायेंगे। और अपनी प्रजाकी ठीक देखभाल नहीं करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परन्तु यह बात नहीं। क्योंकि जब वैद्यका आदर्श जो उपर्युक्त है, उसका पालन जब हरएक वैद्य करता रहेगा, तब वह आलसी बिल्कुल नहीं बनेगा। आजीविकाके प्रश्नके ठीक ठीक हल नहीं होनेसे लोग आदर्शसे गिर जाते हैं।

एक और विचार इस सम्बन्धमें यह है कि वैद्यवृत्तिको अब केन्द्रित कर दिया है। इसका विकेन्द्रीकरण होना चाहिये। अर्थात् यह न हो कि केवल प्रमाणित डाक्टर या वैद्य ही चिकित्सा करें। इसमें स्वार्थसाधनके लिये पर्याप्त अवकाश मिल जाता है। पूर्व कालमें घर घरमें साधारणतया साधारण चिकित्सा होती रहती थी। विशेष रूपसे होनेके लिये वैद्योंके पास आया करते थे। अबके इस केन्द्रीकरणका कारण यही है कि हम लोगोंने पाश्चात्य चिकित्सा प्रणालीको अपनाया है जिसमें विष ही विष भरे हुये हैं। हमारे आयुर्वेदादि चिकित्सा प्रणालीमें खतरनाक चीज है ही नहीं। वैद्यशास्त्र किसी एक मनुष्यका या एक गुटका स्वत्व नहीं होना चाहिये। हरएक परिवारके वृद्ध अपने परिवारके वैद्य हो जायें इसमें प्रजाको शान्ति मिलेगी।

इस सिलसिलेमें एक और आवश्यक बात पर प्रकाश डालना चाहता हूँ। वह है वैद्य और रोगियोंके बीचका विश्वास। पहले बता चुका हूँ कि वैद्य अपनेको "वैद्यो नारायणो हरिः" इस उक्तिके अनुसार दिव्य गुणोंको परमात्माके समान धारण करे। यही वाक्य दूसरी ओर चिकित्सा पानेवाले चाहे रोगी हों, चाहे रोग निवारणके लिये आये हुए हैं चिकित्सक पर पूर्ण विश्वास रखें। इतना विश्वास रखें कि जितना परमात्मा पर। इससे दोनोंको शान्ति मिलेगी। आजकल एक रोगी एक वैद्यके पास जाता है वह वैद्य रोगीके स्वभावको पूर्णरूपेण जान भी नहीं पाता कि वह झट उसको छोड देता है अन्य वैद्यके पास चला जाता है। वहाँ भी यही हाल। इस तरहसे रोगी डाक्टर या वैद्यके बदलनेके चक्करमें पड जाता है। इससे कितना नुकसान होता है वह समझ नहीं पाता। संस्कृतमें ठीक ही कहा है कि, "भेषजे गुरौ यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी।" अर्थात् वैद्य तथा गुरुमें जैसी भावना होती है वैसा ही फल मिलता है। आजकल विद्यार्थी गुरुकी आलोचना करता है इसलिये वह विद्वान् नहीं बन पाता। इसी तरह मरीज भी वैद्य पर विश्वास नहीं करता इसलिये सफलता नहीं मिलती। डा० केण्टने खूब कहा है कि—

The confidence of the patient helps the physician to find the right remedy. His mind works much better when he feels he is trusted. The confidence of the patient sharpens his intelligence.

अर्थात् रोगीका डाक्टर या वैद्यपर विश्वास वैद्य या डाक्टरकी ठीक दवा चुननेमें सहायता करता है। जब वैद्य जान जाता है कि रोगी मुझपर विश्वास कर रहा है तो वैद्यका मन और अच्छी तरह काम करने लगता है। वैद्यपर रोगीका विश्वास उसकी बुद्धिको तीव्र बना देता है।"

युवावस्थामें और अविवाहित अवस्थामें चाहे पुरुष हो, या स्त्री हो, खास करके स्त्रियोंको, वैद्य बनना ठीक नहीं है ऐसा हमारा अनुभूत विचार है। इससे वैद्योंमें चरित्रहीनता नहीं आती। वैद्यकी कमसे कम आयु ३५ सालकी होनी चाहिये। उमर बढते बढते लोकानुभव बढता है और रोगियोंपर विश्वास बैठा सकता है। अविवाहितको वैद्य होना ही नहीं चाहिये। अविवाहित अवस्थामें, खास करके आजकलकी शिक्षा पद्धतिमें चरित्र गिर जानेकी सम्भावना बहुत होती है। पूर्वकालमें वैसी ही बडी उमरवाले वैद्य होते थे। वृद्धावस्थामें मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। जो एक वैद्यके लिये अत्यन्तावश्यक है। जैसे हमने इस पुस्तकमें आगे बताया है उस तरह सादा जीवन और ब्रह्मचर्यका अभ्यास हो जानेसे न विशेष जनसंख्याकी वृद्धि होगी, न जनता रोगी होगी और न आजीविकाका प्रश्न ही जटिल होगा। अपितु सर्वत्र शान्ति और सुख फैलकर मनुष्य सर्वोच्च ध्येयकी ओर अग्रसर होनेमें समर्थ बनेगा।

यह पुस्तक हमारे पूर्वज ऋषि मुनियोंकी विशेष पद्धतिके अनुसार अर्थात्— संस्कृत रूपमें लिखी गई है। पश्चात् उन सूत्रोंकी हिन्दी व्याख्या की है। ये सूत्र स्वतन्त्र हैं कहींसे भी उद्धृत नहीं। हाँ, विषय तो वेद उपनिषद् आयुर्वेद इत्यादि हमारे भारतीय संस्कृतिके उच्च कोटिके ग्रन्थों और पाश्चात्य होमियोपैथी डा० हैनिमेन, केण्ट आदियोंके ग्रन्थों और अपने निजी अनुभवसे संकलित किये गये हैं। पहले सूत्र रूपमें इसलिये रखा है कि विषय पाठकोंके मनमें जल्दी बैठ जाय। हमारे ऋषिमुनियोंकी यह अद्भुत प्रणाली है कि गहन विचारोंको सूत्र रूपसे जनताके सामने रखकर उनकी स्मृतिशक्तिको बढाना। पाणिनि मुनिकी अष्टाध्यायी, अन्य ऋषियोंके षड्दर्शनशास्त्र इसीलिये ही अमर बन गये हैं। और पाश्चात्य लोग भी इस प्रणाली पर मुग्ध हो रहे हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह प्रणाली केवल संस्कृत भाषामें ही हो सकती है औरोंमें नहीं। इसलिये पहले संस्कृतमें सूत्र, पश्चात् उनका हिन्दी भाष्य बनाया गया है।

यह स्वास्थ्यधर्म एक त्रिकोणके समान है जो इस संसार चक्रके अन्तर्गत है। इनमें एक भुजाके भी नहीं रहनेसे त्रिकोण नहीं बनता। अर्थात् स्वास्थ्यधर्म गिर जाता है। इस स्वास्थ्यधर्म रूपी त्रिकोणकी तीन भुजायें हैं (१) स्वास्थ्य धर्मका ज्ञान, (२) स्वास्थ्यधर्मकी रक्षा, (३) स्वास्थ्यधर्म, (बिगडनेपर उसको ठीक करनेके लिये) चिकित्सा। इन तीन विषयोंके अधिकार नामसे तीन विभाग किये हैं। विषयोंको अधिकृत करके जो लिखा गया है वह अधिकार है। इन अधिकारोंमें फिर छोटे छोटे विभाग हैं जो सोपान कहे गये हैं। सोपानका अर्थ सीढी है। इनको चढने पर अर्थात्- समझनेपर पूरे अधिकारका ज्ञान हो जाता है।

संस्कृतमें कहावत है कि "प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्"। अर्थात् कीचडमें पैर रखकर बादमें उसे धोनेके बजाय कीचडमें पैर नहीं रखना ही अच्छा है। अंग्रेजीमें भी Prevention is better than cure ऐसा कहा है. अर्थात्– रोगका निवारण करना, रोग हो जानेपर चिकित्सा करनेसे श्रेष्ठतर है। परन्तु आजकल वैद्यशास्त्र या आयुर्विज्ञान या Medicine जो पूरे विज्ञानके आधारपर स्थित है ऐसा कहा जाता है, केवल इस ओर अग्रसर है कि रोग आनेपर उसे कैसे मिटाया जाय। यदि निवारणका उपाय कोई बतायें तो उन तथाकथित विज्ञानियोंके पास इन्जेक्शन या फिर शरीरमें जहर भर देनेके सिवाय और कोई उपाय है ही नहीं। यह बहुत ही खेदजनक विषय है कि आजकलके आयुर्वेद शिरोमणि भी उनका अनुकरण करते हुये चरक सुश्रुतको भूल गये हैं। हालमें हृदयरोगकी शल्यचिकित्साकी प्रशंसा करते हुये समाचार पत्रमें खबर मिली है। यह हृदयरोग हो ही नहीं, ऐसा उपाय पहिले ही क्यों न किया जाय? शरीरमें परमात्मादत्त शक्तियोंके उपयोगसे मनुष्य पूर्ण स्वस्थ बनकर रोगोंकी चुनौति क्यों न दें। क्या यह विज्ञान नहीं है? हमने इस पुस्तकमें इस तरहके विज्ञानको प्रामुख्यता दी है। मनुष्य अल्पशक्तिमान् होनेसे, या कभी कभी प्रयत्नोंमें दोष हो जानेसे, जब रोग निवारणमें सफलता नहीं मिलती तब चिकित्सा होनी ही है। "पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण पीड्यते" पूर्वजन्मका पाप रोग बनकर मनुष्यको कष्ट देता है। इसलिये ऋषिमुनियोंने औषधप्रणाली बनाई। परन्तु यह आपद्धर्म है। आजकल आपद्धर्म ही सामान्यधर्म होगया है। इसको रोकनेके लिये हमने यह पुस्तक पाठकोंके सामने रखी है।

इस पुस्तकके सूचित हर विषयपर भी एक बडी बडी पुस्तक लिखी जा सकती है जैसे व्यायाम प्राणायाम इत्यादि। चिकित्साके विषयमें भैषज्यतत्व (Materia Medica) बहुत विस्तृत रूपसे लिखा जा सकता है और लिखा भी है। अतः हमारा उद्देश्य इतना ही है कि आयुर्विज्ञान या स्वास्थ्यधर्मके विषयमें यथा सम्भव इससे सम्बन्धित सब विषयोंपर एक रूपरेखा पाठकोंके सामने पेश करके उनकी रुचि रोग निवारणकी ओर ज्यादा बढावें। इसमें बताये हुये सबके सब उपाय ऋषि मुनियोंकी समाधिसे निकले हुये विषय हैं। हमारा स्वतन्त्र विचार कुछ भी नहीं है।

हम तो विद्वान् नहीं हैं। शास्त्रोंकी बातोंपर पूर्ण विश्वास कर उनके बताये हुये उपायोंको यथाशक्ति प्रयोगमें लाये हुये सेवक हैं। इन उपायोंसे जो लाभ उठाये हैं, उन लाभोंसे उत्साहित होकर उसकी सेवा करनेकी भगवत्प्रेरणासे यह लिखी है। इनमें त्रुटियाँ होंगी ही। यदि पाठकगण इनको और उनके मनमें जो शंकायें हों उनको भी बतायेंगे तो अवश्य विचार करके त्रुटियोंका सुधार और शंकाओंका समाधान भी यथाशक्ति किया जायेगा।

परमपिता परमात्मासे प्रार्थना है कि, वह जनताके मनमें इस पुस्तकमें बताये हुये खास वचनों पर श्रद्धा उत्पन्न करके उस श्रद्धोत्पन्न कर्म द्वारा सबको सुखशान्ति देवे।

"श्रद्धया सत्यमाप्यते"
श्रद्धासे सत्यकी प्राप्ति होती है।

"वेदोद्यानम्" गौरीबिदनूर
(मैसूर-राज्य)
८ नवम्बर १९६६

निवेदक
डॉ. दा. विश्वमित्र
एच. एस. डी.

×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वास्थ्य-धर्म

उपक्रमाधिकारः

अथातः स्वास्थ्यधर्मजिज्ञासा ॥ १ ॥

व्याख्या— अब (अतः) इसलिये स्वास्थ्यधर्मकी जिज्ञासा की जाती है। किसलिये ? इसलिये कि—

[१] 'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' अर्थात्- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थके लिये आरोग्य, (अरोग शब्दसे भावार्थमें ष्यञ् प्रत्यय) नीरोगता या रोगका नहीं होना श्रेष्ठ कारण है। इन चतुर्विध की विस्तृत व्याख्या न करते हुये इतना ही कहना पर्याप्त है कि, मनुष्यका साराका सारा उद्देश्य ही इसमें चित्रित किया गया है। मोक्ष जो आखिरी वस्तु है उसको भी सारा संसार चाहता है। मोक्षको हमारे ऋषि मुनियोंने कहा कि, जन्म-मरणसे छुटकारा पाना। ईसाई इसको 'हेवेन' (Heaven) कहते हैं। और मुसलमान "जन्नत" कहते हैं। इस तरह शब्द अनेक होनेपर लक्ष्य एक ही है। इसीलिये यह मोक्ष शब्द साम्प्रदायिक नहीं। धर्म, अर्थ और काम, इस संसार के सुखको देनेवाले हैं। मोक्ष है परलोक-सौख्य। इन दोनों के लिये रोगरहित होना अत्यन्तावश्यक है। इस विचारसें इतना ही दिग्दर्शन काफी है। क्योंकि सब संसार इसका अनुभव करता है।

[२] आजकल स्वास्थ्यधर्म किसको कहते हैं इसका स्वरूप क्या है ? इस विषयमें मिथ्या ज्ञान (सत्य ज्ञानका नहीं होना) प्रचलित है। मिथ्याज्ञान ही सब दुःखोंका मूल है जैसे- कि, गौतममुनिने अपने न्यायशास्त्रमें लिखा है कि- "दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः"

अर्थात्- मिथ्याज्ञानके हटनेसे दोष हटते हैं। दोषके हटनेसे प्रवृत्ति हटती है इसके हटनेसे जन्म नहीं होता, जन्मके न होनेसे दुःख नहीं। दुःखका अभाव ही मोक्ष है। इसकी व्याख्या नहीं करनी है केवल इतना ही बताना था कि, मिथ्या-ज्ञान सब दुःखोंका मूल है।

[३] भूमिकामें बताया है कि हमारा मुख्य उद्देश्य स्वा-स्थ्यविषयकी दुरवस्थाको मिटाना है।

[४] मनुष्यकी आयु बढे। सारा संसार दीर्घायुष्यकी कामना करता है। दीर्घायुवाले व्यक्तिकी प्रशंसा करता है। दीर्घायुमें मनुष्यके लिये अपने कर्तव्योंके पूरा पूरा पालन करनेका अवकाश मिलता है। हमारे लिये यहाँ दीर्घायुके विषयका इतना ही विस्तार काफी है क्योंकि यह विशेष गम्भीर विचार है।

[५] परमात्माने इस देह और इसके अन्दरकी शक्तियों-को केवल उस देहधारीके लिये नहीं दिया कि उसे जब चाहे तब मिटा दे या आत्महत्या करले। इसका अधिकार उसे नहीं। इसलिये आत्महत्या एक पाप समझा जाता है। कानू-नमें भी दण्ड विधान है क्योंकि शरीरादि देशका धन है इसे बरबाद करें तो अपराध होगा। इससे अपने देशके ऋणसे और अन्य ऋणोंसे उर्ऋण होना है। एक डाक्टरने बहुत अच्छा कहा-- है, कि जो रोगी होता है उसे जेल भेजना चाहिये। कहनेका मतलब है कि स्वास्थ्यधर्मका अज्ञान एक अपराध है परमात्मा इसको क्षमा नहीं करता।

अब जिज्ञासा क्या है देखें। "ज्ञातुमिच्छा- जिज्ञासा" अर्थात्- जाननेकी इच्छा जो है वह जिज्ञासा कहलाती है। जिज्ञासासे मनुष्य उन्नति पाता है। यह जिज्ञासा ही एक वस्तुके स्वरूपको जगाती है। जिज्ञासाके विना मनुष्य अपने कर्तव्य नियमको समझ नहीं सकता। इसके विना मनुष्य आलसी बन जाता है। और आलस्य ही अवसानका कारण है। जैसा कि "विरामोऽवसानम्" इस सूत्रमें पाणिनिमुनिने कहा है। आजकल बहुधा जिज्ञासाकी कमी देखी जाती है, चलो किसी न किसी तरहसे गाडी चलती रहे यह भावना हो चुकी है। इसीलिये पुरुषार्थसे मनुष्य रोगका निवारण नहीं कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहा है। इस कारण सूत्रमें जिज्ञासा शब्दका प्रयोग है। यही ऋषिमुनियोंकी परिपाटी है। कि पूरी तरह एक वस्तुकी जिज्ञासा करके जान ले। केनोपनिषद् एक इसका उदाहरण है। क्योंकि केन शब्द जिज्ञासाका द्योतक है। अब अगले सूत्रमें विषयके अच्छी तरह समझमें आनेके लिये स्वास्थ्यधर्मके तीन भाग बताते हैं।

तत्र ज्ञानरक्षाचिकित्साः ॥ २ ॥

स्वास्थ्यधर्म तीन भागोंमें बांटा गया है। (१) स्वास्थ्य-धर्मका ज्ञान, (२) स्वास्थ्यधर्मकी रक्षा, (३) स्वास्थ्यके बिगडने पर उसकी चिकित्सा। यह तीन भाग क्यों हैं इसे अच्छी तरहसे जान लेना आवश्यक है। तभी सफलता मिलती है। इस संसारमें जितने विज्ञानशास्त्र निकले हैं वे सबके सब इन तीन तीन विभागोंसे युक्त हैं (१) ज्ञान, (२) कर्म, (३) उपासना + इन्हींको अंग्रेजी भाषामें क्रमशः Theory, practice and maintanance कहते हैं। पहिले, एक वस्तुके स्वरूपको जानना होता है इसीको ज्ञान या Theory कहा है। दूसरा- उस ज्ञानको काममें लाना होता है इसको कर्म या Practice कहा है। तीसरा- उस कर्मको एक बार करनेसे कोई लाभ नहीं, बार बार करते रहना, जीवनभर करते रहना इसीको उपासना या maint-ainence कहा है। उदाहरणके लिये- एक विद्युत् यंत्रको लेलें। पहले उस यंत्रको बनानेके लिये यह सोचकर निष्कर्ष करना होता है कि इसमें लोहेका भाग कितना और कहाँ हो। और अन्यका भाग कितना और कहाँ हो। विद्युत् प्रवाह इधर उधर बिखर न जाय ऐसी वस्तु जो इन्सुलेषन Insulation कहलाती वह कितनी और कैसी और कहाँ हो इत्यादि इत्यादि। पहले इन विचारोंका चित्र बनाना होता है। यही ज्ञान है। पश्चात्- इस चित्रके अनुसार यंत्र तैयार करना। ऐसे एक यंत्रसे कुछ नहीं बनता, कई बनाने पडते हैं। यही दूसरा कर्म भाग है। इस तरह सिर्फ विचार किये हुए यंत्रोंको बनाकर रख देनेसे ही क्या फायदा? इनका चलाना भी आवश्यक है। फिर एक बार चलाकर बन्द कर-नेसे भी कुछ फायदा नहीं। इसको हमेशा चलाते रहना चाहिए तब उससे फायदा होता है, सुख मिलता है अन्यथा नहीं। यह तीसरा भाग ही उपासना है। (उपासना शब्द-का अर्थ समीप रहना ऐसा अर्थ है। समीप रहकर ही किसी वस्तुको चलाना, देखभाल करना होता है।) इसी तरहसे स्वास्थ्यधर्ममें भी जानना चाहिये। यद्यपि इन विभागोंका नाम शास्त्रप्रवृत्तिके अनुसार अलग अलग दिया है किन्तु उद्देश्य एक ही है। पहिला स्वास्थ्यधर्ममें क्या क्या विषय है इस विचारका ज्ञान हुआ। दूसरा इन विषयों या ज्ञानका उपयोग कैसे करें यह रक्षा हुई, यही कर्म है। तीसरा भाग चिकित्सा, यही उपासना है। इस शब्दका अर्थ जो ऊपर बताया वही यहाँ भी लागू होता है। आगे इनका विवरण लिखा जायगा।

॥ इत्युपक्रमाधिकारः ॥

॥ यहां उपक्रमाधिकार समाप्त ॥

अथ ज्ञानाधिकारः

प्रथमं सोपानम्

अथ सामान्यज्ञानम् ॥ १ ॥

अब स्वास्थ्यधर्मके विषयमें सबसे पहले आम तौर पर जो ज्ञान आवश्यक है। उसको बताते हैं। जैसे हमने भूमिकामें बताया, सफल वैद्य होनेके लिए सृष्टिसे लेकर परमात्मातक सबका सामान्यज्ञानके होनेकी आवश्यकता है। इसलिये यहाँ प्रथमतः यह कराया जाता है। इसको अनावश्यक समझकर आजकल भूल की जा रही है। (Knowledge is power) ज्ञान ही शक्ति है। इस ज्ञानमें सब तरहका ज्ञान शामिल है। अगले सूत्रमें स्वास्थ्य क्या है इसका विचार करेंगे।

अथ स्वास्थ्यम् ॥ २ ॥

अब स्वास्थ्य क्या है इसकी व्याख्या की जाती है।

स्वात्मनि स्थातुं शीलम् ॥ ३ ॥

यहाँ दूसरे सूत्रसे स्वास्थ्य शब्दकी अनुवृत्ति है। अर्थात्- उस शब्दको यहां जोड लेना चाहिये। अब स्वास्थ्य क्या है देखें। 'स्वस्थ' शब्दके साथ भावार्थमें ष्यञ् प्रत्यय लगानेसे स्वास्थ्य शब्द बनता है। अब स्वस्थका अर्थ है "स्वात्मनि तिष्ठतीति स्वस्थः" जो अपनी आत्मामें स्थिर रहता है वह मनुष्य ॐ स्वस्थ है। आत्मामें स्थिर

+ इन तीन विभागोंसे युक्त होनेसे ही वेदोंको "त्रयी" नाम दिया गया है।

ॐ यहां मनुष्य शब्दका प्रयोग इसलिये किया है कि आयुर्विज्ञान मनुष्यके विषयमें ही विशेषतया लागू होता है। यद्यपि अन्य प्राणी भी स्वस्थ रहते और अस्वस्थ होते हैं। इनमें केवल कायचिकित्सा लागू होती है। इस विषयका आगे विवरण करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहनेका अर्थ ही क्या? अर्थ यह है कि वह इतना ही महसूस करता है कि "मैं हूं" न उसको अपनी आंखकी ओर ध्यान जाता है न कानकी ओर और न किसी इन्द्रियोंकी ओर। वे इन्द्रियां अपने अपने काम विना रुकावट करती जाती हैं। इसी स्थितिको भगवद्गीतामें इस तरह बताया है कि—

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

अर्थात्— स्थित प्रज्ञावाले * मनुष्यकी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयोंके साथ मिलकर स्वाभाविकतासे काम करती रहती हैं। और आत्मा चञ्चल नहीं होती। अपने आपमें स्थिर रहती है। यह है स्वस्थ मनुष्यकी दशा। जब थोडीसी दशा बिगड जाय तो उसको अपनी इन्द्रियोंका ज्ञान हो जाता है। जैसे— आंखके अपने विषयों पर नहीं लगने और उसमें त्रुटि होनेसे आंखका काम रुक जाता है तब वह कह उठता है कि हाय मेरी आंख। इसी तरह अन्य इन्द्रियोंके बारेमें भी है। स्वस्थावस्था और शान्तावस्था दोनों एक ही हैं। इस सम्बन्धमें डा० केण्टने जो कहा है वह देखने योग्य है।

As you sit there in your seat in a perfect state of quietitude or tranqulity you are not conscious of your eyes! of your limbs, of your hair. You have to stop and think, whether you feel or not. When all the functions are carried on in a perfectly orderly way, you have no consciousness of your body, which means you are in freedom, when not in freedom the individual says "I feel".

इसका तात्पर्य वही है जो हमने ऊपर कहा है। इस तरहका स्वास्थ्य जो है वह मनुष्यका स्वभाव हो जाय इसलिये यहां "शील" शब्दका प्रयोग किया है। अन्यथा स्वास्थ्य, स्वास्थ्य नहीं कहलाता। क्योंकि कभी रोगी और कभी स्वस्थ रहना भी मनुष्यके कर्तव्योंमें रुकावट डालता है। अगले सूत्रमें इसका अन्य नाम बताते हैं।

तन्निरामयत्वम् ॥ ४ ॥

इस स्वास्थ्यको निरामयत्व भी कहते हैं। आमय कहते हैं रोगको। रोगरहित होना ही निरामयत्व है। इसीको नीरोगता या आरोग्य या तन्दुरुस्ती कहते हैं। अगले सूत्रमें स्वास्थ्यधर्मका विचार करते हैं।

तद्धारणविषयः स्वास्थ्यधर्मः ॥ ५ ॥

इस निरामयत्वको कैसे किन नियमोंसे धारण करें अर्थात् हासिल करें, प्राप्त करें, या अपनावें, यह स्वास्थ्यधर्म है। ऊपर स्वास्थ्य शब्दकी व्याख्या की है। अब धर्म शब्दकी ओर देखें। भूमिकामें इसकी कुछ व्याख्या की भी है। यहाँ इतना ही कहना है कि धृ धातुसे मन् प्रत्यय लगाकर बना हुआ यह शब्द धारण करना इस अर्थमें आता है। अतः नियम, कर्तव्य, गुण, इनका अर्थ इसके अन्तर्गत है। नियमोंका और कर्तव्योंका पालन ही मनुष्यत्वको धारण करता है। इसी तरहसे गुण भी उस वस्तुको धारण करता है। नियमों और कर्तव्योंका पालन करनेसे मनुष्य सुखी होता है। इस लिये कणाद मुनिने अपने वैशेषिक दर्शनमें कहा है कि "यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" अर्थात्— जिससे इस लोकमें और परलोकमें सुख मिलता है वह धर्म है। धर्मके कई अर्थ होते हैं। जैसे— परमात्मा, आत्मा, आदि वे भी इस मौलिक अर्थकी व्यापकतासे ही हैं। परन्तु जो आजकल 'मजहब' या 'मत' के अर्थमें लेते हैं वह असंगत है।

स्वास्थ्य और धर्म इन दोनों शब्दोंके समाससे स्वास्थ्य-धर्म शब्द बना है। इसलिये इन दोनोंका अर्थ इसमें है। अर्थात्— जिन जिन नियमोंके अपनाने या पालन करनेसे उपर्युक्त रीतिसे स्वास्थ्यकी प्राप्ति होती है, वह स्वास्थ्यधर्म है। भोगवादियोंके लिये अगले सूत्रमें इसका उद्देश्य फिर समझाते हैं।

स तु पुरुषार्थचतुष्टयहेतोः ॥ ६ ॥

स्वास्थ्यधर्मको क्यों अपनायें? उसका उद्देश्य क्या है? उत्तर— चार प्रकारके पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये। इसकी व्याख्या संक्षेपसे जितनी हमें हमारे प्रकृत विषयके लिये आवश्यक है उतनी ही उपक्रमाधिकारमें की है। इस सूत्रमें पुनरुक्ति दोष नहीं आता। क्योंकि यही चार प्रकारका पुरुषार्थ जीवनका मुख्य लक्ष्य तथा सब सुखोंको देनेवाला है। भोगवाद नहीं है, क्योंकि जैसे भर्तृहरिने खूब कहा—

* प्रज्ञानाम आत्माका भी होता है। अस्थितप्रज्ञ मनुष्य रोगी होता है। अर्जुन रोगी हो गया था। इसलिए श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेशरूपी दवा पिलाई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" भोगे रोगभयम् " जैसे भोगविलासके पीछे दौडनेवाला मनुष्य रोगी बनकर दुःख पाता है जरूर ।

उसको फिर स्मृतिपथमें लानेके लिये यह सूत्र कहा है । अगले सूत्रमें पुरुषार्थ क्या है उसे और समझाते हैं । क्योंकि इसका ठीक ठीक ज्ञान मनमें बैठ जानेपर स्वास्थ्यधर्मकी ओर श्रद्धा बढेगी ।

क्रतुरेव पुरुषार्थः ॥ ७ ॥

क्रतु ही पुरुषार्थ है । पुरुष शब्दका अर्थ यहाँ स्त्रीलिंगके विपरीत पुल्लिंग वाचक शब्दका नहीं है । परन्तु आम तौरपर मानवका वाचक है । असली अर्थ अगले सूत्रमें दिखाया गया है । और 'अर्थ' शब्द तो उद्देश्य, लक्ष्य, कर्तव्य इनका वाचक है । क्रतु शब्दका अर्थ है यज्ञ । परमात्माको शतक्रतु कहा है । वह शत या असंख्य यज्ञ करनेवाला है । सारी सृष्टिका काम वही चलाता है । प्रतिक्षण पल पल भी वह अपना काम चलाता रहता है । कभी भी रुकता नहीं । यह काम परमात्मा अपने लिये नहीं कर रहा है परन्तु केवल जीवोंके लिये । अतः जितने परोपकारके कर्म हैं जिससे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा संसारकी उन्नति होती है, सुख शान्ति मिलती है, वे सब यज्ञ शब्दके अन्तर्गत आते हैं । इसीको क्रतु या पुरुषार्थ कहा है । अब पुरुष शब्दका अर्थ देखें ।

पुरुष आत्मा ॥ ८ ॥

आत्माको पुरुष कहते हैं । यहाँ आत्माका अर्थ शरीरमें रहनेवाला जीवात्मा है । इस आत्माको संसारके सब लोग मानते हैं । अंगरेजी कवि क्या, वैज्ञानिक क्या, सब मानते हैं । अंगरेजीमें " Soul " कहते हैं मुसल्मान, 'रूह' कहते हैं । इसलिये यह कोई साम्प्रदायिक शब्द नहीं । इसके विना शरीर निस्तेज, निष्कर्म और एक लकडीके समान जड वस्तु हो जाता है । इसके चले जानेसे मुर्दा पडा रहता है । तब उसकी चिकित्सा कौन करे या कैसे हो सकती है ? इसीलिये " कायचिकित्सा " इस शब्दमें केवल शरीरका ही अर्थ नहीं समझना चाहिये क्योंकि शरीरान्तर्गत और भी सूक्ष्म वस्तुयें हैं । उनके भी स्वरूप और कार्य समझमें आजाने चाहिये तभी सफलतापूर्वक चिकित्सा होगी । " अततीत्यात्मा " अर्थात् जो व्यापक होता है उसे आत्मा कहते हैं आत्माकी शक्ति सारे शरीरमें व्याप्त है अर्थात्– हर जगह मौजूद है ।

जैसे ईश्वरकी शक्ति सारी सृष्टिमें अणु अणुमें मौजूद है । क्योंकि ईश्वरकी व्यापक–शक्ति हमारे ज्ञानसे परे है । इसलिये उसको परमात्मा कहा है । शरीरमें रहनेवाली आत्मा होती है । आत्माको पुरुष भी कहते हैं । इसकी निरुक्ति यास्कमुनि ने अपने निरुक्तमें ऐसी की है– " पुरुषं पुरिशय इत्याचक्षीरन् " (अ. १– खं. ११.) अर्थात्– पुरुष वह है जो (पुरि) संसार या शरीरमें व्याप्त होके पूर्ण करता है । यह शरीर भी पुरि कहलाता है । (इसका विवरण अपने स्थानमें आयेगा) इसमें व्याप्त होनेके कारण जीवात्माको भी पुरुष कहा है । परमात्मा तो परम पुरुष है ही ।

अगले सूत्रमें शरीरके किन किन क्षेत्रोंमें आत्मा काम करती है यह बताते हैं—

पञ्चकोशसम्पन्नश्च ॥ ९ ॥

इस सूत्रमें आत्माकी अनुवृत्ति है और यह आत्मा पाञ्चकोशोंसे युक्त है । यहाँ कोशका अर्थ सूक्ष्मस्थान है । क्या आत्मा पान्च जगहोंमें रहती है ? उत्तर– नहीं । यद्यपि आत्मा एक ही स्थानमें स्थित है तथापि उसकी शक्ति पान्च स्थानोंमें व्याप्त होनेके कारण इन पान्चों शक्तियों या सूक्ष्म स्थानोंका नाम कोश पड गया है । जैसे– यद्यपि राष्ट्रपति या प्रधान एक प्रदेशमें रहते हैं परन्तु उनकी शक्ति अनेक स्थानोंमें काम करती रहती है, उसी तरह यहाँ भी समझ लेना चाहिये । पान्चकोश कौन कौनसे हैं यह अगले सूत्रमें बतायेंगे ।

अन्नप्राणमनोविज्ञानानन्दमयाः कोशाः ॥ १० ॥

अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश, आनन्दमयकोश ये पांच आत्माके कोश हैं । इसका आधार यजुर्वेदके—

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणायज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥
शुक्ल यजु. १७।४०

इस मंत्रमें है । इसमें उपर्युक्त पान्चों कोशोंका सुन्दर निरूपण है । इसकी व्याख्या विस्तृत न करते हुये केवल इतना ही यहाँ बताना पर्याप्त है, कि " देवसेनानां ' इस शब्दसे पन्च ज्ञानेन्द्रिय पन्च कर्मेन्द्रिय युक्त अन्नमयकोश को (देव नाम इन्द्रियोंका है) " मरुत " शब्दसे इसके पूर्व जो प्राण या वायुयुक्त प्राणमय कोश है उसको, (प्राण या वायुका नाम मरुत् भी है), बृहस्पति शब्दसे बुद्धि या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनयुक्त मनोमयकोशको, "इन्द्र" शब्दसे विज्ञानमय (विज्ञान और इन्द्र दोनों आत्माके वाचक हैं) कोशको "यज्ञ और सोम" शब्दोंसे आनन्दमय कोशको बतलाया है (सोम शब्द आह्लाद या आनन्दका वाचक है)। अगले सूत्रमें अन्नमयकोश क्या है, यह बतलाते हैं।

तत्रान्नमयः शरीरम् ॥ ११ ॥

यहां कोश शब्दकी अनुवृत्ति है। इनमें शरीर अन्नमयकोश कहलाता है। क्योंकि शरीर अन्नपानादिसे बढता है। उनके न रहनेसे क्षीण हो जाता है। आगे प्राणमयको बताते हैं।

प्राणापानादिक्रियाशक्तिः प्राणमयः ॥ १२ ॥

जो प्राण अपानादि काम करती है वह शक्ति प्राणमयकोश है। इस सूत्रमें आदि शब्द इसलिये प्रयुक्त किया है कि प्राणकी शाखायें कई हैं। इनका विवरण अपने स्थानमें आगे आयगा।

मनआदिक्रियाशक्तिर्मनोमयः ॥ १३ ॥

मनकी क्रियारूप शक्ति जो हैं वह मनोमयकोश कहा जाता है। इस सूत्रमें भी आदि शब्द इसलिये है कि इसकी शाखायें भी बहुत हैं जिन्हें अपने स्थानमें बतायेंगे।

आत्मशक्तिर्विज्ञानमयः ॥ १४ ॥

उपर्युक्त जीवात्माकी स्वक्रियारूपी जो शक्ति वह विज्ञानमयकोश है। आत्मा चेतन है, जड नहीं। इसलिये इसका विज्ञान ऐसा भी एक नाम है। इस सन्दर्भमें डा० केण्टने कितने स्पष्ट शब्दोंमें उपर्युक्त पांच कोशोंका प्रतिपादन किया है वह देखने योग्य है।

Considered more internally we have the will and understanding, forming a unit making the interior man, the Vital force or Viceregent of the soul, which is immaterial and the body which is material.

(Immaterial सूक्ष्म; Material स्थूल)

यहाँ विल् Will नामसे मनबुद्धि और चित्तका, understanding नामसे मनका भाग जो अहंकार जिससे कि आत्मा समझती या अनुभव करती है उसका, soul नामसे आत्माका और body नामसे शरीरका प्रतिपादन किया है। इससे यह बिल्कुल स्पष्ट अर्थ निकलता है कि एक वैद्यको चाहिये कि इन तत्त्वोंको समझ ले। अगले सूत्रमें आनन्दमय कोशका विचार करते हैं।

एतद्व्याप्ते परमात्मनि स्थितिरानन्दमयः ॥ १५ ॥

उपर्युक्त इन सब कोशोंमें (एतेषु व्याप्तः एतद् व्याप्तः तस्मिन्) व्याप्त परमात्मामें स्थिर रहना जो होता है वह आनन्दमय कोश कहलाता है। अगले सूत्रमें सृष्टि क्या है बताते हैं।

प्रकृतिविकृतिर्हि ब्रह्माण्डम् ॥ १६ ॥

प्रकृति अर्थात् मूल प्रकृति (Primordeal matter) ब्रह्माण्ड कहलाता है। यही सृष्टि है। सब भौतिक विज्ञानके (Physical science) विद्वान् जानते हैं कि इस सृष्टिके किसी वस्तुको = उदाहरणके लिये एक मिट्टीके ढेलेको लेकर उसका विभाग करते करते एक ऐसे तत्त्वपर पहुंचते हैं कि आगे विभाग हो ही नहीं सकता। ऐसे तत्त्वको मूल प्रकृति कहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि सारी सृष्टि या सारा ब्रह्माण्ड इस मूल प्रकृतिकी ही बदली हुई अवस्था है अर्थात् इस मूल प्रकृतिसे ही ब्रह्माण्ड (Cosmos) बना हुआ है। अगले सूत्रमें बताते हैं कि इस ब्रह्माण्डका अधिष्ठाता या मालिक कौन है ?

ब्रह्माण्डाधिष्ठाता हि परमात्मा ॥ १७ ॥

इस ब्रह्माण्डका अधिष्ठाता या मालिक सब कर्मोंका चलानेवाला परमात्मा ही है। अगले सूत्रमें ये आत्मा किसका अधिष्ठाता है यह बतलाते हैं।

पिण्डाधिष्ठाता ह्यात्मा ॥ १८ ॥

यह आत्मा जो है वह पिण्डका अधिष्ठाता है पिण्डका अर्थ है शरीरादि। यही इस शरीरमें सबको चला रही है। (इस बातको भूलना नहीं, क्योंकि आगे इस ज्ञानका उपयोग बतायेंगे)। इस सम्बन्धमें भी डा० केण्टका वचन उद्धृत करना अच्छा है।

Everything in man and everything that takes place in man is presided over primarly by this centre (soul).

अर्थात् मनुष्यमें प्रत्येक कार्य जो होता है यह प्रधानतः एक अत्युत्कृष्ट केन्द्र (आत्मा) से अधिष्ठित है। अगले सूत्रमें इस पिण्डका ब्रह्माण्डसे क्या सम्बन्ध है बताते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१२८ अन्वेको वदति यद् ददाति तद् रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥

१२९ प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन् दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥

१३० अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक् पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन् त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ ॥

१३१ यो भोजनं च दयसे च वर्धन—मार्द्रादा शुष्कं मधुमद् दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६ ॥

अर्थ—[१२८] (एकः) एक (यत्) जो कुछ (ददाति) देता है (तत्) उसे (अनु वदति) बोलता जाता है। (तत् अपाः) उस कर्मसे युक्त (एकः) एक (रूपा) रूपोंका (मिनन्) भेद करता (ईयते) जाता है। ब्रह्म (एकस्य) एकके (विश्वाः) सारे (वि नुदः)) हटाने योग्य कर्मोंको (तितिक्षते) दूर करता है। हे इन्द्र! (यः) जिस तूने उनके लिये (ता) उन कर्मोंको (प्रथमं) पूर्व (अकृणोः) किया, (सः) वह तू (उक्थ्यं) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ३ ॥

[१२९] देव लोग (प्रजाभ्यः) प्रजाओंके लिये (आयते) आनेवाले अतिथिके लिये (पृष्ठं) जीवन धारक, पालनसें (प्र भवन्तं) समर्थ (रयिं इव) धनके समान, (पुष्टिं) पुष्टिकर अन्न (वि भजन्तः आसते) बाँटते रहते हैं (दंष्ट्रैः) दांतोंसे (पितुः) पालक अन्नका (भोजनं) भोजन (अत्ति) खाता है। हे इन्द्र! (यः) जिस तूने इन देवों और मनुष्योंके (ता) उन हितकर कार्योंको सबसे (प्रथमं) पूर्व (अकृणोः) किया है (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ४ ॥

[१३०] हे (अहिहन्) अहिके मारनेवाले इन्द्र! (यः) जिस तूने (धौतीनां) नदियोंके (पथः) मार्गोंको (अरिणक्) खोला (अध) और (संदृशे) देखनेके लिये (दिवे) सूर्यके प्रकाशसें (पृथिवीं) पृथिवीको (अकृणोः) स्थापित किया। (देवाः) देवोंने, (उदभिः न) जैसे जलसे धोकर (वाजिनं) घोडेको वेगवान् बनाते हैं, वैसे, (तं उस त्वा) तुझ (देवं) देवको (स्तोत्रेभिः) स्तोत्रोंसे (अजनन्) बलवान् बनाया। (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ५ ॥

१ धौती— कंपानेवाली, नदी, धारा।

[१३१] हे इन्द्र! (यः) जो तू यजमानके लिए (भोजनं च) भोजन और (वर्धनं च) वृद्धिका साधन (दयसे) प्रदान करता है और (आर्द्रात्) गीले वृक्षादिसे (शुष्कं) सूखा (मधु-मत्) मीठा फल (आ दुदोहिथ) दुहता, उत्पन्न करता है। (सः) वह तू (विवस्वति) यजमानके घरमें (शेवधिं) धन (नि दधिषे) स्थापित करता है। जो तू (एकः) अकेला (विश्वस्य) समस्त जगत्का (ईशिषे) स्वामित्व करता है (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्रके निमित्त यज्ञमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा अपना अपना काम करते हैं। इनमें ब्रह्मा यज्ञके दोषोंको दूर करता है ॥ ३ ॥

यज्ञसे इन्द्रकी शक्ति बढती है। वह बलवान् होकर वृष्टि करता, इससे अन्न होता है और उस अन्नको खाकर प्राणी जीते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्र अहिको मारकर जलको प्रवाहित करता है और वृत्रका अन्धकार मिटाकर सूर्यके प्रकाशसें पृथिवीको स्थापित करता है। जैसे मनुष्य घोडेको मलकर पानीसे धोकर उसमें स्फूर्ति भर देते हैं वैसे देव स्तुति द्वारा इस इन्द्रको प्रोत्साहित कर देते हैं। उत्साहसे भर देते हैं ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१३२ यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणा ऽधि दाने व्य१वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥ ७ ॥

१३३ यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्य-मुतैवाद्य पुरुकृत् सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥

१३४ शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून् त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१३२] हे इन्द्र ! (यः) जिसने (दाने अधि) खेतमें (पुष्पिणीः च) फल उत्पन्न करनेवाली (अवनीः) संरक्षक औषधियोंको उनके (धर्मणा) गुणोंसे युक्त करके (वि अधारयः) विविध रूपोंमें स्थापित किया, (यः च) और जिसने (दिवः) चमकते हुए सूर्यसे (असमाः) समानता रहित अनेक गुणोंवाली (दिद्युतः) किरणें (अजनः) उत्पन्न कीं, जिस (उरुः) महान्ने (अभितः) सब ओर (ऊर्वान्) दूर तक फैले हुए पर्वतोंको उत्पन्न किया; (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ७ ॥

[१३३] हे (पुरुकृत्) अनेक कार्योंके कर्ता इन्द्र ! (यः) जिस तूने (सह-वसुं) धनसे सम्पन्न (नार्मरं) नार्मरको (निहन्तवे) मारनेके लिये, (पृक्षाय च) अन्नकी प्राप्ति तथा (दासवेशाय) दस्यु लोगोंके विनाशके लिये अपनी (ऊर्जयन्त्याः) बलवाली वज्रकी धारके (अपरिविष्टं) निर्मल (आस्यं) मुखको (उत एव अद्य) ठीक आज, उसी समय उस शत्रुपर (अवहः) फेंका (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (असि) है ॥ ८ ॥

१ नार्मर (नृ-मर्-अण्)— मनुष्योंकी हत्या करनेवाला नृमर और उसका पुत्र नार्मर, असुर, मेघ, दुष्टका पुत्र, दुष्ट ।

[१३४] हे इन्द्र ! (यत् ह) जब कि तूने (एकस्य) एकबार (श्रुष्टौ) सुखके निमित्त (चोदं) दाता यजमानकी (आविथ) रक्षा की, (यस्य) जिसके रथको (दश) दस (शतं वा) सौ घोडे एक (साकं) साथ खींचते हैं, जो तू सबका (आ अद्यः) भोज्य है, जिसने (दभीतये) दभीति ऋषिके लिये, (अरज्जौ) रस्सीसे बांधे विना ही (दस्यून्) दुष्टोंको (सं उनप्) नष्ट कर दिया और उस दभीतिका (सुप्र-अव्यः) उत्तम साथी (अभवः) बना, (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्र यजमानको धन देता और उसके खेतको फूल-फलसे सम्पन्न करता है। इस प्रकार अपने यजमानको हर तरहसे समृद्ध बनाता है। उसका यह काम सचमुच प्रशंसनीय है ॥ ६ ॥

खेतोंमें फूल फलसे लदे जौ-गेहूं आदि दिखाई देते हैं, ये इन्द्रके स्थापित किये हुए हैं। इन औषधियोंमें अनेक शक्तियां हैं ये ही इनके धर्म हैं। सूर्यका प्रकाश भी एक प्रकारका नहीं, उसमें अनेक रंग और अनेक गुण हैं। ये सब प्रकाश-किरण तथा पर्वतादि इन्द्रकी रचना हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रके वज्रकी धारा तीक्ष्ण है। उस धारका मुंह चमचमाता है। इस वज्रसे ही नार्मरका वध होता है। इसी वज्रसे वह दासका वध करके अन्न प्रदान करता है ॥ ८ ॥

इन्द्र जिसके यहां एक बार भी आनन्द प्राप्त करता है, उसकी सदा रक्षा करता है। उस इन्द्रके रथको एक हजार घोडे खींचते हैं। वह सबका सेव्य है। दुष्टोंको दूरसे ही नष्ट कर देता है। उसके उपासक उसके पास निर्भय होकर जा सकते हैं। क्योंकि वह उनका मित्र और साथी है ॥ ९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१३५ विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ १० ॥

१३६ सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं१ यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥ ११ ॥

१३७ अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन् त्सास्युक्थ्यः ॥ १२ ॥

१३८ अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ ॥

अर्थ—[१३५] (विश्वा इत्) सारी ही (रोधनाः) नदियां (अस्य) इस इन्द्रके (पौंस्यं) पराक्रमके (अनु) अनुकूल चलती हैं । यजमान (अस्मै) इसके लिये हवि (ददुः) देते हैं, उन्होंने इस (कृत्नवे) क्रियावान्‌के लिये (धनं) धन (दधिरे) एकत्र किया है । हे इन्द्र ! तूने (षट्) छः (विस्तिरः) विस्तृत पदार्थोंको (अस्तभ्नाः) धारण कर रखा है, तू (पञ्च) पांच प्रकारके (संदृशः) देखनेवाली प्रजाओंका (परि) सब ओरसे (परः अभवः) पालक हुआ है । (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ १० ॥

[१३६] हे (वीर) वीरतासे पूर्ण इन्द्र ! (यत्) जिस कारण तू (एकेन) एक बारके (क्रतुना) प्रयत्नसे ही अभीष्ट (वसु) धन (विन्दसे) प्राप्त कर लेता है; इस कारण (तव) तेरा वह (वीर्यं) पराक्रम (सुप्रवाचनं) प्रशंसनीय है। तू (सहस्वतः) बलधारी (जातूस्थिरस्य) जातूष्ठिरका (वयः) अन्न (प्र) स्वीकार करता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (या) जिन (विश्वा) समस्त उत्तम कर्मोंको (चकर्थ) किया है, उनके कारण (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ११ ॥

[१३७] हे इन्द्र ! तूने (तूर्वीत्ये च) तुर्वीति और (वय्याय च) वय्यको (कं) सुखपूर्वक (सरपसः) जलसे (तराय) पार जानेके लिये जलोंके (स्रुतिं) प्रवाहको (अरमयः) नियममें रखा, शान्त किया। जलको (नीचा) गहराईमें (सन्तं) पडे हुए (परावृजं) परावृक् ऋषिको जलसे (उत् अनयः) ऊपर किया । अपनी (श्रवयन्) कीर्तिको बढाते हुए तूने (अन्धं) अन्धे और (श्रोणं) पङ्गुको (प्र) उत्तम आंख और पांव दान किये । (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ १२ ॥

[१३८] हे (वसो) धन-सम्पन्न (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे पास (वसव्यं) धन (बहु) बहुत है । तू (तत्) वह (राधः) धन (दानाय) दान करनेके लिये (अस्मभ्यं) हमें (सं अर्थयस्व) दे । (यत्) जो तेरा (चित्रं) चाहने योग्य धन है, उसे तू (अनु द्यून्) प्रतिदिन (श्रवस्याः) देनेकी इच्छा कर । हम (सु-वीराः) उत्तम वीरोंसे युक्त होकर (विदथे) यज्ञमें, सभामें तेरे सामने (बृहत्) बृहत् साम (वदेम) बोलें ॥ १३ ॥

भावार्थ— इन्द्र जलको बहाता, यजमानोंका दान स्वीकार करता, सब पदार्थोंको वशमें रखता और सब प्रजाओंको पालता है ॥ १० ॥

इन्द्रका प्रयत्न कभी विफल नहीं जाता। उसने एक नहीं, अनेक उत्तम कार्य किये हैं जिससे उसकी प्रशंसा हो रही है। वह स्वयं भी बलवान् है इसलिए वह बलवान् लोगोंके द्वारा दिए गए अन्नको ही स्वीकार करता है, कायरोंका नहीं ॥ ११ ॥

इन्द्र पार जानेके लिये जलकी गहराई कम करता, जलमें डूबे हुओंको बचाता, अन्धेको आंख और पङ्गुको पांव देता है ॥ १२ ॥

इन्द्रके पास असंख्य धन हैं। स्तोता उसी धनको प्राप्त कर देवोंके निमित्त यज्ञका प्रबन्ध करते हैं ॥ १३ ॥

×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[१४]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ।]

१३९ अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोम—मामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥ १ ॥

१४० अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥

१४१ अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वात—मिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३ ॥

१४२ अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥ ४ ॥

---

[१४]

अर्थ— [१३९] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (सोमं) सोम (भरत) भरपूर दो । (अमत्रेभिः) पात्रोंसे इसके लिये (मद्यं) आनन्ददायक (अन्धः) अन्न (आ सिञ्चत) दो । यह (वीरः) वीर इन्द्र (अस्य) इस सोमके (पीतिं) पानको (सदं) सदा (कामी हि) चाहनेवाला है । इस (वृष्णे) सुखकी वर्षा करनेवालेके लिये (तत् इत्) उसीका (जुहोत) हवन करो । (एषः) यह इन्द्र उसे (वष्टि) चाहता है ॥ १ ॥

[१४०] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिस इन्द्रने (अशन्या इव) जैसे बिजली (वृक्षं) वृक्षको मार देती है वैसे ही वज्रसे, (अपः) जलको (वव्रिवांसं) रोकनेवाले (वृत्रं) वृत्रको (जघान) मार दिया है, (तत् वशाय) इच्छावाले (तस्मै) उस इन्द्रके लिये (एतं) यह सोम (भरत) दो । (एषः) यह (इन्द्र) इन्द्र (अस्य) इस सोमके (पीतिं) पीनेकी (अर्हति) योग्यता रखता है ॥ २ ॥

[१४१] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिसने (दृभीकं) दृभीकका (जघान) वध किया, (यः) जिसने (गाः) गौएं (उत् आजत्) प्रकट कीं और (वलं) वलको (अप वः हि) अनावरण कर दिया— वलके घेरेको तोड दिया, (अन्तरिक्षे न वातं) जैसे आकाशमें अर्थात् वायुको स्थापित करते हैं वैसे (तस्मै) उस इन्द्रके लिये (एतं) यह सोम स्थापित करो । (जूः न वस्त्रैः) जैसे निर्बल मनुष्य वस्त्रसे अपने अंगोंको ढकता है, वैसे (सोमैः) सोमसे (इन्द्रं) इन्द्रको (आ ऊर्णुत) आच्छादित कर दो ॥ ३ ॥

१ दृभीक- (सर्वान् विदारयति भियं करोतीति दृभीको नामासुरः-सायणः)— जो सबको मारता और भय उत्पन्न करता है उसका नाम दृभीक है, असुर मेघ ।

[१४२] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिसने (उरणं) उरणको (जघान) मारा, उसकी (नव) नौ (चख्वांसं) आंखों और (नवतिं) नब्बे (बाहून् च) भुजाओंको नष्ट किया, (यः) जिसने (अर्बुदं) अर्बुदको (नीचा) नीचेकी ओर (अव बबाधे) गिरा दिया (सोमस्य) सोमके (भृथे) यज्ञकी ओर (तं इन्द्रं) उस इन्द्रको (हिनोत) प्रेरित करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्र सोमकी इच्छा करता है । यह सोम उसका आनन्द और उत्साहवर्धक अन्न है ॥ १ ॥

इन्द्र वृत्रको नष्ट करता है, इसलिये वह सोम पीनेका अधिकारी है । वृत्र अन्धकारका प्रतीक है और सोम ब्रह्मज्ञानका प्रतीक है । जो वृत्ररूपी अज्ञानान्धकारको नष्ट करता है, वही ब्रह्मज्ञान पानेका अधिकारी होता है ॥ २ ॥

इन्द्र दृभीक और वल असुरोंका नाश करता है । वलके बन्धनसे गौओंको छुडाता है, इसलिये अध्वर्यु लोग उसका पेट सोम-रससे पूर्ण कर देते हैं ॥ ३ ॥

जो इन्द्र अनेक असुरोंका वध करता है, वही सोम पीनेका अधिकारी है ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१४३ अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५ ॥
१४४ अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥ ६ ॥
१४५ अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान् न्यावृणग् भरता सोममस्मै ॥ ७ ॥
१४६ अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥

अर्थ— [१४३] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिसने (अश्नं) अश्नको (सु जघान) मारा, (यः) जिसने (अशुषं) न मरने योग्य परन्तु दूसरोंके प्राणशोषक (शुष्ण) शुष्णको, (यः) जिसने (वि अंस) बाहु रहित अहिको, (यः) जिसने (पिप्रुं) पिप्रुको (नमुचिं) नमुचिको और (यः) जिसने (रुधिक्रां) रुधिक्राको मारा, (तस्मै) उस (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (अन्धसः) अन्नका (जुहोत) हवन करो ॥ ५ ॥

१ अश्न— पराया धन खानेवाला ।

२ नमुचि— न छोडनेवाला, अत्यागी ।

३ रुधिक्रा— दूसरोंकी सीमा या घरसें घुसनेवाला, डाकू, चोर, असुर, दुष्ट ।

[१४४] हे ! (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिसने (अश्मना इव) पत्थरके समान कठोर वज्रसे (शम्बरस्य) शम्बरके (पूर्वीः) पुराने (शतं) सौ (पुरः) नगर (विभेद) तोड दिये, (यः) जिस (इन्द्रः) इन्द्रने (वर्चिनः) वर्चीके (शतं सहस्रं) सैंकडों सहस्रों वीर भूमिपर (अप अवपत्) गिरा दिये, (अस्मै) इस इन्द्रके लिये (सोमं) सोम (भरत) दो ॥ ६ ॥

[१४५] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिस (जघन्वान्) घातकने (भूम्यः) भूमिके (उपस्थे) ऊपर (शतं) सैंकडों और (सहस्रं) सहस्रों असुरोंको मारकर (आ अवपत्) चारों ओर बिछा दिया, जिसने (कुत्सस्य) कुत्स, (आयोः) आयु और (अतिथिग्वस्य) अतिथिग्वके (वीरान्) वीरोंको (नि अवृणक्) नीचा दिखाया, (अस्मै) इस इन्द्रके लिये, (सोमं) सोम (भरत) जुटाओ ॥ ७ ॥

[१४६] हे (नरः) नेता (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! तुम (यत्) जो कुछ (कामयाध्वे) चाहो, (इन्द्रे) इन्द्रके निमित्त (श्रुष्टी) शीघ्र हवि (वहन्तः) देते हुए, (तत्) उस वस्तुको (नशथ) प्राप्त करो । हे (यज्यवः) (गभस्तिपूतं) अंगुलियोंसे छाने हुए (सोमं) सोमको (श्रुताय) कीर्तिमान् (इन्द्राय) इन्द्रके आगे (भरत) भरपूर दो और उसकी अग्निमें (जुहोत) हवन करो ॥ ८ ॥

१ नरः ! यत् कामयाध्वे, इन्द्रे हवन्तः तत् नशथ— हे मनुष्यो ! तुम जो चाहते हो, उसे इन्द्रको प्रसन्न करके प्राप्त कर लो ।

भावार्थ— यह इन्द्र पराये धनको खानेवाले, दूसरोंके रक्तको चूसनेवाले, सर्पवत् कुटिल व्यवहार करनेवाले आदि दुष्टोंको मारता है और तब वह सोम प्राप्त करनेका अधिकारी बनता है, उसी प्रकार राजा भी दुष्टोंका विनाश करे, तभी वह प्रजाके आदरका पात्र हो सकेगा ॥ ५ ॥

इन्द्र शत्रुके बडे-बडे गढोंको तोड देता और असंख्य वीरोंको भूमिपर सुला देता है ॥ ६ ॥

इन्द्र अपने पक्षके राजा और ऋषियोंकी सहायता करके उनके शत्रुओंका नाश करता है और इसके फल-स्वरूप उनसे सोम प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

मनुष्य जो कुछ चाहता है, उसे वह हवि देकर इन्द्रको प्रसन्न करके प्राप्त कर सकता है । इन्द्र सर्वैश्वर्यवान् है अतः वह हरप्रकारसे अपने भक्तोंकी सहायता करता है ॥ ८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१४७ अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९ ॥

१४८ अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद् दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ १० ॥

१४९ अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११ ॥

१५० अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १२ ॥

अर्थ— [१४७] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (अस्मै) इस इन्द्रके निमित्त (श्रुष्टिं) सुखकर सोम यज्ञ (कर्तन) करो । (वने) लकडीके बर्तनमें (निपूतं) छाने हुए सोमको (वने) लकडीके पात्रमें रखकर इन्द्रके (उत् नयध्वं) आगे ले जाओ । सोमको (जुषाणः) सेवन करनेवाला इन्द्र (वः) तुम्हारे (हस्त्यं) हाथके बनाये हुए सोमको (अभि वावशे) बहुत चाहता है । इसलिये (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (मदिरं) आनंदकारी (सोमं) सोमका (जुहोत) हवन करो ॥ ९ ॥

[१४८] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यथा) जिस प्रकार (गोः) गायका (ऊधः) थन (पयसा) दूधसे भरा रहता है, उसी प्रकार (ईं) इस (भोजं) भोजनदाता (इन्द्रं) इन्द्रको (सोमभिः) सोमोंसे (पृणत) पूर्ण करो । (अहं) मैं (मे) मेरे (अस्य) इस सोमके (एतत्) इस (निभृतं) गुप्ततत्त्वको (वेद) जानता हूं । (यजतः) पूजनीय इन्द्र (दित्सन्तं) देनेकी इच्छावाले यजमानको (भूयः) और अधिक (चिकेत) देता है ॥ १० ॥

१ यजतः दित्सन्तं भूयः चिकेत— यह पूज्य इन्द्र दान करनेकी इच्छावाले मनुष्यको और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

[१४९] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जो इन्द्र (दिव्यस्य) द्युलोकमें उत्पन्न (यः) जो (पार्थिवस्य) अन्तरिक्षमें उत्पन्न और (क्षम्यस्य) पृथ्वीपर उत्पन्न (वस्वः) धनका (राजा) स्वामी है (यवेन) जौ आदि अन्नसे (ऊर्दरं न) जैसे कोठेको भरते हैं वैसे (तं) उस (इन्द्रं) इन्द्रको (सोमेभिः) सोमोंसे (पृणत) पूर्ण करो । (वः) तुम्हारा (तत्) वह (अपः) कार्य सदा (अस्तु) बना रहे ॥ ११ ॥

[१५०] हे (वसो) धन-सम्पन्न (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे पास (वसव्यं) धन (बहु) बहुत है । तू (तत्) वह (राधः) धन (दानाय) दान करनेके लिये (अस्मभ्यं) हमें (सं-अर्थयस्व) दे । (यत्) जो तेरा (चित्रं) चाहने योग्य धन है, उसे तू (अनु द्यून्) प्रतिदिन (श्रवस्याः) देनेकी इच्छा कर । हम (सु-वीराः) उत्तम वीरोंसे युक्त होकर (विदथे) यज्ञमें, सभामें तेरे सामने (बृहत्) बृहत् साम (वदेम) बोलें ॥ १२ ॥

भावार्थ— इन्द्रको पात्रमें आनंदकारी वर्धक सोम दिया जाता है ॥ ९ ॥

जिस प्रकार गायके थनोंमें दूध भरा रहता है उसी प्रकार इन्द्रको सोमरससे भरपूर करो । यह पूज्य इन्द्र दानियोंका हर तरहसे संरक्षण करनेवाला है । दानी जितना दान करता है, उससे अधिक ही यह इन्द्र उन दानियोंको प्रदान करता है । ॥ १० ॥

इन्द्र द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवीके धनोंका स्वामी है, अध्वर्यु उसे सोमसे तृप्त करके धन प्राप्त करते हैं ॥ ११ ॥

इन्द्रके पास असंख्य धन हैं । स्तोता उसी धनको प्राप्त कर देवोंके निमित्त यज्ञका प्रबन्ध करते हैं ॥ १२ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[१५]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- इन्द्रः। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

१५१ प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्या—स्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥

१५२ अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्त—मा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ २ ॥

१५३ सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानै—र्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ३ ॥

१५४ स प्रवोळ्हॄन् परिगत्या दभीते—र्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सं गोभिरश्वैरसृजद् रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ४ ॥

---

[१५]

अर्थ—[१५१] (सत्यस्य) सत्यस्वरूप (अस्य) इस (महतः) महान् इन्द्रके सर्वदा (सत्या) स्थिर (महानि) महान् (करणानि) कर्मोंको मैं (प्र घ नु वोचं) भली-भांति कहता हूं। (इन्द्रः) इन्द्रने (त्रिकद्रुकेषु) तीन पात्रोंमें (सुतस्य) सोमका (अपिबत्) पान किया और उसने (अस्य) इस सोमके (मदे) उत्साहमें (अहिं) अहिको (जघान) मारा ॥ १ ॥

[१५२] इन्द्रने (द्यां) द्यौलोकको (अवंशे) बिना बासके ऊपर (अस्तभायत्) स्थिर किया। (बृहन्तं) बडे (अन्तरिक्षं) आकाश और (रोदसी) दोनों लोकोंको अपनी सत्तासे (अपृणत्) पूर्ण कर दिया। (सः) उसने (पृथिवीं) पृथिवीको (धारयत्) धारण किया और उसे (पप्रथत्) फैलाया। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कार्य (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ २ ॥

[१५३] इन्द्रने (मानैः) माप-तोलके अनुसार नदियोंको (सद्म इव) गृहके समान (प्राचः) पूर्वकी ओर चलनेवाली (वि मिमाय) बनाया। अपने (वज्रेण) वज्रसे उन (नदीनां) नदियोंके (खानि) मार्गोंको (अतृणत्) खोदा। उन्हें (दीर्घयाथैः) दूरतक जाने योग्य (पथिभिः) मार्गोंसे (वृथा) सहज ही (असृजत्) बहा दिया। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ३ ॥

[१५४] (सः) उस इन्द्रने (दभीतेः) दभीतिके (प्र वोळ्हन्) अपहरण करनेवाले असुरोंको (परिगत्य) चारों ओरसे घेरकर उनके (विश्वं) सारे (आयुधं) शस्त्र-अस्त्र (इध्मे) प्रदीप्त हुई (अग्नौ) अग्निमें (अधाक्) जला दिये। उसे दभीतिको (गोभिः) गाय, (अश्वैः) घोडे और (रथेभिः) रथोंसे (सं असृजत्) संयुक्त किया। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) आनन्दमें (चकार) किये ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्रके कार्य महान् और स्थिर हैं। वह सोमके प्रभावसें अहि आदिका नाश करता है। उसके महान् कर्मोंका हमेशा गुणगान करना चाहिए ॥ १ ॥

निराधार आकाशमें द्यौको इन्द्रने स्थिर किया, विशाल अन्तरिक्ष और द्युमें उसकी महिमा भरी हुई है उसीके कारण यह भूमि स्थिर है। यह सभी काम वह सोमके उत्साहसे करता है ॥ २ ॥

नदियोंको इन्द्रने पूर्व दिशाकी तरफ बहनेवाली बनाया। पूर्व दिशा मुख्य है। उसी दिशाकी ओर द्वार रखकर घर बनानेका विधान है। सभी नदियां पूर्वकी तरफ प्रवाहित होती हैं। यह मस्तिष्क भाग पुरोभाग होनेसे पूर्व है, जो सभी नाडी रूप नदियोंका केन्द्र है। सभी नाडियां इसी मस्तिष्ककी तरफ प्रवाहित होती हैं। इन्द्र आत्मा अपनी शक्तिसे इन नाडियोंके जानेके मार्ग बनाता है ॥ ३ ॥

इन्द्र असुरोंको और उनके शस्त्रोंको अग्निमें जला देता और दभीतिको गौ घोडे आदिसे सम्पन्न करता है ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१५५ स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात् सो अस्नातॄनपारयत् स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ५ ॥
१५६ सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन् त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६ ॥
१५७ स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद् व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ७ ॥
१५८ भिनद् वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥

अर्थ— [१५५] (सः) उस इन्द्रने ऋषियोंको पार (एतोः) जानेके लिये (ईं) इस (महीं) बडी (धुनिं) नदीको (अरम्णात्) धीमा किया। (सः) उसने (अस्नातॄन्) पार जानेमें असमर्थोंको (स्वस्ति) कुशलपूर्वक नदीके (अपारयत्) पार कर दिया। (ते) वे ऋषिलोग नदीको (उत् स्नाय) तर कर (रयिं) धनके स्थानकी ओर (अभि प्र तस्थुः) चले। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ५ ॥

१ धुनि— तटको नष्ट करनेवाली नदी जल-प्रवाह।

[१५६] (सः) उस इन्द्रने अपने (महित्वा) बलसे (सिन्धुं) नदीको (उदञ्चं) उत्तरकी ओर (अरिणात्) बहाया। उसने अपनी (जवनीभिः) वेगवाली सेनाओं द्वारा (अजवसः) निर्बल सेनाओंको (विवृश्चन्) नष्ट करते हुए (वज्रेण) वज्रसे (उषसः) उषाकी (अनः) गाडीको (सं पिपेष) तोड-फोड दिया। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ६ ॥

[१५७] (सः) वह (परावृक्) परावृक् ऋषि (कनीनां) सुन्दरी स्त्रियोंके (अपगोहं) न दीखनेके कारणको (विद्वान्) जानकर, इन्द्रकी कृपासे, पुनः (आविः भवन्) प्रकाशित होता हुआ उनके (उत् अतिष्ठत्) सम्मुख हुआ। (श्रोणः) पङ्गु ऋषि पांव प्राप्त कर उनके पास (प्रति स्थात्) गया। (अनक्) नेत्रहीन ऋषि नेत्र प्राप्त कर (वि अचष्टे) पूर्णतया देखने लगा। (इन्द्रः) इन्द्र ऊपर कहे हुए (ता) वे कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ७ ॥

१ कनी— (कन्-दीप्ति) कमनीय, कन्या, सुन्दरी स्त्री।

२ परा-वृक्— दूर फेंका हुए, जिसे कोई न चाहे परन्तु वह किसीको चाहे।

[१५८] (अङ्गिरोभिः) अङ्गिरा लोगोंसे (गृणानः) प्रशंसित होकर इन्द्रने (वलं) वलको (भिनत्) तोड दिया। (पर्वतस्य) पर्वतके (दृंहितानि) सुदृढ द्वारोंको (वि ऐरत्) खोल दिया। (एषां) इन असुरोंकी (कृत्रिमाणि) रची हुई (रोधांसि) बाडोंको (रिणक्) दूर हटा दिया। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) ये सब कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र ऋषियोंकी सहायता करता है। एकबार कुछ ऋषि कहीं जा रहे थे कि बीचमें वेगवती नदी पडी, तब इन्द्रने आकर नदीके प्रवाहको धीमा किया। इस प्रकार वे ऋषिगण उस नदीको पार करके अपने अभीष्ट स्थानपर गए। वह सब काम इन्द्र अपने सोमके उत्साहमें करता है ॥ ५ ॥

इन्द्र आवश्यकता पडने पर नदियोंका प्रवाह बदल देता है। वह सुदृढ रथोंको भी तोड देता है ॥ ६ ॥

परावृक् स्त्रियोंकी इच्छा करता था। पङ्गु और नेत्रहीन होनेके कारण कुमारियां उसे नहीं चाहती थीं। इन्द्रने परावृकको पांव और नेत्र देकर उसकी इच्छा पूर्ण की ॥ ७ ॥

इन्द्र अङ्गिरा आदि स्तोताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वल आदि असुरोंको मारता है, सोमके उत्साहमें वह किसी भी विघ्नकी परवाह नहीं करता। असुरोंके द्वारा बनाये गए बाडोंको भी तोडकर वह आगे बढ जाता है ॥ ८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१५९ स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ९ ॥

१६० नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १० ॥

[१६]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इंद्रः । छन्दः- जगती; ९ त्रिष्टुप् ।]

१६१ प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुति-मग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद् युवानमवसे हवामहे ॥ १ ॥

अर्थ— [१५९] हे इन्द्र! तूने (दस्युं) दुष्ट (चुमुरिं) चुमुरि (धुनिं च) और धुनिको (स्वप्नेन) निद्रासे (अभि-उप्य) युक्तकर (जघन्थ) मार दिया और (दभीतिं) दभीतिकी (प्र आवः) रक्षा की । (रम्भी चित्) दण्डधारीने (अत्र) यहां पर (हिरण्यं) धन (विविदे) प्राप्त किया । (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ९ ॥

१ रम्भी— दण्डवाला, दण्ड लेकर रक्षा करनेवाला, द्वारपाल ।

[१६०] (इन्द्र) इन्द्र । (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है । तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (शिक्ष) दे । (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर । तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो । हम (सु-वीराः) अच्छे वीरोंवाले स्तोतालोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥ १० ॥

[१६]

[१६१] हे यजमानो ! मैं (वः) तुम्हारी रक्षाके निमित्त (सतां ज्येष्ठतमाय) सज्जनोंमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्रके लिये (सं इधाने) खूब प्रज्ज्वलित (अग्नौ हविः इव) अग्निमें हवि देनेके समान (सु स्तुतिं) सुन्दर स्तुति (प्र भरे) देता हूं । कभी (अजुर्य) नष्ट न होनेवाले, पर शत्रुओंको (जरयन्तं) नष्ट करनेवाले सोमसे (उक्षितं) तृप्त किये गये (सनात्) सनातन और सदा (युवानं) शक्ति सम्पन्न (इन्द्रं) इन्द्रको हम तुम्हारी (अवसे) रक्षाके लिये (हवामहे) पुकारते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र अपने मोहनेवाले अस्त्रसे शत्रुओंको सुला देता और उन्हें इसी अवस्थामें मार देता है । शत्रुसे जीते हुए धनमेंसे योग्य भागको बांटता है ॥ ९ ॥

इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है । वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है । वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं, क्योंकि वह इन्द्रको बढानेवाले बडे बडे स्तोत्र बोलता है ॥ १० ॥

जलती हुई आगमें जिस प्रकार घी आदि सामग्री डालते हैं, इन्द्रके लिये भी उसी प्रकार प्रेमसे हवन करना चाहिये । वह इन्द्र स्वयं कभी नष्ट न होते हुए शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है ॥ १ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१६२ यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन् त्संभृताधि वीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २ ॥
१६३ न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥ ३ ॥
१६४ विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥ ४ ॥
१६५ वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मि-र्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६२] (यस्मात्) जिस (बृहतः) बडे (इन्द्रात्) इन्द्रके (ऋते) विना और (किं चन ईं) कोई भी बडा नहीं है (अस्मिन् अधि) इसमें ही (विश्वानि) सब (वीर्या) पराक्रम (सं भृता) भरे हुए हैं। इन्द्र (जठरे) पेटमें (सोमं) सोम, (तन्वि) शरीरमें (महः) बडा (सहः) बल, (हस्ते) हाथमें (वज्रं) वज्र और (शीर्षणि) शिरमें (क्रतुं) ज्ञान (भरति) धारण करता है ॥ २ ॥

१ जठरे सोमं तन्वि महः हस्ते वज्रं शीर्षणि क्रतुं भरति— यह इन्द्र पेटमें सोमको, शरीरमें महान् शक्तिको, हाथमें वज्रको और मस्तिष्कमें ज्ञानको धरण करता है।

[१६३] (यत्) जब तू अपने (आशुभिः) शीघ्रगामी घोडों द्वारा (पुरु) बहुत (योजना) योजनोंतक (पतसि) जाता है, उस समय (तेरा) तेरा (इन्द्रियं) बल, (क्षोणीभ्यां) दोनों लोकोंसे (न) नहीं (परिभ्वे) रुकता, थमता। हे (इन्द्र) इन्द्र! (ते) तेरा (रथः) रथ (समुद्रैः) समुद्रों और (पर्वतैः) पहाडों द्वारा (न) नहीं रोका जा सकता। (कः चन) कोई भी वीर (ते) तेरे (वज्रं) वज्रको (न) नहीं (अनु अश्नोति) रोक सकता ॥ ३ ॥

१ यत् आशुभिः पुरु योजना पतसि ते इन्द्रियं क्षोणीभ्यां न परिभ्वे— जब यह इन्द्र शीघ्रगामी घोडोंके द्वारा अनेकों योजन तय कर जाता है, उस समय इसके वेगको द्यु और पृथ्वी लोक भी नहीं रोक सकते।

२ ते रथः समुद्रैः पर्वतैः न— तेरा रथ समुद्रों और पर्वतोंसे भी नहीं रोका जा सकता।

[१६४] (विश्वे हि) सारे लोग (अस्मै) इस (यजताय) पूजनीय, शत्रुके (धृष्णवे) नाशक, (वृषभाय) बलवान्, तथा स्तोताओंके यहां (सश्चते) रहनेवाले इन्द्रके लिये (क्रतुं) यज्ञको (भरन्ति) आरम्भ करते हैं। हे यजमान्! देवोंको (विदुष्टरः) भली भाँति जाननेवाला और उनके लिये सोम आदि (वृषा) देनेवाला तू इन्द्रको (हविषा) हविसे (यजस्व) पूज। हे (इन्द्र) इन्द्र! तू (वृषभेण) बलवान् (भानुना) तेजके साथ (सोमं) सोमको (पिब) पी ॥ ४ ॥

[१६५] देवोंको (वृष्णः) तृप्त करनेवाले सोमका (कोशः) रस और (मध्वः) मीठे सोमकी (ऊर्मिः) धारा (वृषभ-अन्नाय) बलवर्धक अन्नवाले (वृषभाय) बलवान् इन्द्रके (पातवे) पीनेके लिये (पवते) झरती है। (वृषणा) तृप्त करनेवाले (अध्वर्यू) दो अध्वर्यु तथा (वृषभासः) बलवाले (अद्रयः) पत्थर (वृषभाय) बलवान् इन्द्रके निमित्त (वृषणं) बलकारक (सोमं) सोम (सुष्वति) बनाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— इन्द्रसे बडा कोई नहीं। यह सब बलोंका भण्डार और ज्ञानका मूल-स्थान है। ज्ञानका प्रकाश यही किया करता है। इसके शरीरमें शक्ति, हाथमें वज्र और मस्तिष्कमें ज्ञान है अर्थात् यह शत्रुओंपर ज्ञानपूर्वक आक्रमण करके अपनी शक्तिसे शस्त्रोंकी सहायतासे उन्हें मारता है। शक्तिके साथ साथ ज्ञान भी हो ॥ २ ॥

इन्द्रके बल, रथ और वज्रको रोकनेका किसीसे भी सामर्थ्य नहीं है। इसलिये वह विना रुके दूरतक चला जाता है ॥ ३ ॥

सब लोग इन्द्रके निमित्त यज्ञ करते और उससे इन्द्र तथा उसके साथियोंको सोम पिलाते हैं ॥ ४ ॥

यह सोमरस देवोंको तृप्त करता है अतः जब अध्वर्यु मिलकर पत्थर पर कूट पीसकर इसे छानकर तैय्यार करते हैं, तब उसे इन्द्र पीता है और आनन्दित होता है ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१६६ वृषा॑ ते॒ वज्र॑ उ॒त ते॒ वृषा॒ रथो॒ वृष॑णा॒ हरी॑ वृष॒भाण्यायु॑धा ।
वृष्णो॒ मद॑स्य वृषभ॒ त्वमी॑शिष॒ इन्द्र॒ सोम॑स्य वृष॒भस्य॑ तृप्णुहि ॥ ६ ॥
१६७ प्र ते॒ नाव॒ं न सम॑ने वच॒स्युव॒ं ब्रह्म॑णा या॒मि सव॑नेषु दाधृ॑षिः ।
कु॒विन्नो॑ अ॒स्य वच॑सो नि॒बोधि॑ष॒दिन्द्र॒मुत्स॒ं न वसु॑नः सिचामहे ॥ ७ ॥
१६८ पु॒रा सं॑बा॒धाद॒भ्या व॑वृत्स्व नो धे॒नुर्न व॒त्सं यव॑सस्य पि॒प्युषी॑ ।
स॒कृत्सु ते॑ सुम॒तिभिः॑ शतक्रतो॒ सं पत्नी॑भि॒र्न वृष॑णो नसीमहि ॥ ८ ॥
१६९ नू॒नं सा ते॒ प्रति॒ वरं॑ जरि॒त्रे दु॑ही॒यदि॑न्द्र॒ दक्षि॑णा म॒घोनी॑ ।
शिक्षा॑ स्तो॒तृभ्यो॒ माति॑ धग्भगो॑ नो बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६६] हे (वृषभ) बलशाली (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरा (वज्रः) वज्र (वृषा) शक्तिशाली है (उत) और (ते) तेरा (रथः) रथ भी (वृषा) शक्तिसे भरा हुआ है । तेरे (हरी) घोडे (वृषणा) बलवान् और तेरे (आयुधा) हथियार भी (वृषभाणि) शक्तिसे भरपूर हैं । (त्वं) तू (वृष्णः) बलसे भरे (मदस्य) मदका (ईशिषे) स्वामित्व करता है, अतः इस (वृषभस्य) बलसम्पन्न (सोमस्य) सोमसे (तृप्णुहि) तृप्त हो ॥ ६ ॥

[१६७] शत्रुओंको (दाधृषिः) मिटा देनेवाला मैं, (नावं न) नावके समान, (समने) युद्धमें (वचस्युवं) स्तुतिको प्राप्त करनेवाले (ते) तेरे पास (सवनेषु) यज्ञोंमें (ब्रह्मणा) स्तुति द्वारा (प्र यामि) आता हूँ । वह इन्द्र (नः) हमारी (अस्य) इस (वचसः) वाणीको (कुवित्) बहुत बार (नि बोधिषत्) जाने। हम (उत्सं न) कूँएके समान, (वसुनः) धनके भण्डार (इन्द्रं) इन्द्रको सोमसे (सिचामहे) सींचते हैं ॥ ७ ॥

[१६८] हे (शत-क्रतो) सैंकडों कर्मोंके करनेवाले इन्द्र ! (यवसस्य) घास खाकर (पिप्युषी) मोटी बनी हुई (धेनुः) गाय (न) जैसे (वत्सं) बछडेके पास दूध पिलाने पहुंच जाती है, वैसे तू (संबाधात्) आपत्ति आनेसे (पुरा) पहले ही (नः) हमारे पास (अभि आ ववृत्स्व) पहुँच जा । (पत्नीभिः) पत्नियों द्वारा (न) जैसे (वृषणः) समर्थ पति पास बुलाये जाते हैं, वैसे (ते) तेरी (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियोंसे हम (सकृत्) एक वार (सं सु नसीमहि) उत्तम बुद्धियोंसे संयुक्त हों ॥ ८ ॥

१ यवसस्य पिप्युषी धेनुः वत्सं न संबाधात् पुरा नः अभि आ ववृत्स्व— हे इन्द्र ! घास खाकर पुष्ट बनी हुई गाय जिस प्रकार बछडेके पास दूध पिलानेके लिए पहुंच जाती है, उसी प्रकार तू हम पर आपत्ति आनेसे पहले ही हमारे पास पहुंच जा ।

२ ते सुमतिभिः सकृत् सं सु नसीमहि— तेरी उत्तम बुद्धियोंसे हम एक बार संयुक्त हों ।

[१६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है । तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (शिक्ष) दे । (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर । तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो । हम (सु-वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोता लोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्रके रथ, वज्र, घोडे, सोम और शस्त्र सभी शक्तिवाले हैं, इसीसे इन्द्रका बल बढा हुआ है ॥ ६ ॥

इन्द्र युद्धके समय स्तोताओंकी पुकार सुनता है । स्तोता स्तुति द्वारा उसके समीप जाते और उसे सोमसे तृप्त करते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्र हमें कष्ट आनेसे पहले ही सहायता दे । उसकी कृपा हम पर सदा बनी रहे । हम हमेशा उसकी उत्तम बुद्धिके अनुसार चलें ॥ ८ ॥

इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है। वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है । वह स्तोताको ही प्राप्त होती है, दूसरेको नहीं, क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे-बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥ ९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[१७]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; ८-९ त्रिष्टुप् ।]

१७० तद॑स्मै॒ नव्य॑मङ्गिर॒स्वद॑र्चत॒ शुष्मा॒ यद॑स्य प्र॒त्नथो॒दीर॑ते ।
वि॒श्वा॒ यद् गो॒त्रा सह॑सा॒ परी॑वृता॒ मदे॒ सोम॑स्य दृंहि॒तान्यैर॑यत् ॥ १ ॥

१७१ स भू॑तु॒ यो ह॑ प्रथ॒माय॒ धाय॑स॒ ओजो॒ मिमा॑नो मह॒िमान॒माति॑रत् ।
शूरो॒ यो यु॒त्सु त॒न्वं॑ परि॒व्यत॑ शी॒र्षणि॒ द्यां म॑हि॒ना प्रत्य॑मुञ्चत ॥ २ ॥

१७२ अधा॑कृणोः प्रथ॒मं वी॒र्यं॑ म॒हद् यद॒स्याग्रे॒ ब्रह्म॑णा शु॒ष्मम॑ैरयः ।
र॒थे॒ष्ठेन॒ हर्य॑श्वेन॒ विच्यु॑ताः॒ प्र जी॒रयः॑ सिस्रते स॒ध्र्य१॑क् पृथ॑क् ॥ ३ ॥

१७३ अधा॒ यो विश्वा॒ भुव॑ना॒भि म॒ज्मने॑शान॒कृत् प्रव॑या अ॒भ्यव॑र्धत ।
आद् रोद॑सी॒ ज्योति॑षा॒ वह्नि॒रात॑नो॒त् सीव्य॑न् तमां॑सि॒ दुधि॑ता॒ सम॑व्ययत् ॥ ४ ॥

---

[१७]

अर्थ— [१७०] (यत्) जिस कारण (अस्य) इस इन्द्रकी (शुष्माः) शक्तियाँ (प्रत्नथा) पूर्व कालके समान ही (उत्-ईरते) बढ रही हैं, (यत्) क्योंकि उस इन्द्रने (सोमस्य) सोमके (मदे) प्रभावमें शत्रुओं द्वारा (दृंहितानि) सुदृढ और (परीवृता) घिरे हुए (विश्वा) सम्पूर्ण (गोत्रा) गढ अपने (सहसा) बलसे (ऐरयत्) गिरा दिये हैं (तत्) उस लिये (अस्मै) इसके निमित्त (अङ्गिरस्वत्) अङ्गिरा लोगोंके स्तोत्रोंके समान उत्तम (नव्यं) स्तोत्र (अर्चत) पढो ॥ १ ॥

[१७१] (यः ह) जिस इन्द्रके (प्रथमाय) प्रथम वार (धायसे) पीनेके लिये (ओजः) बल (मिमानः) संचित करते हुए अपने (महिमानं) बलको (आ) और भी (अतिरत्) बढाया, (सः) वह सदा बलवान् (भूतु) हो । (यः) जिस (शूरः) पराक्रमी इन्द्रके (युत्सु) युद्धोंमें अपने (तन्वं) शरीर पर कवच (परि-व्यत) धारण किया, उसने अपने (महिना) सामर्थ्यसे (शीर्षणि) शिरके स्थानमें (द्यां) द्यौको (प्रति अमुञ्चत) स्थापित किया ॥ २ ॥

[१७२] हे इन्द्र ! (यत्) जब कि तूने (अस्य) इस स्तोताके (अग्रे) सम्मुख (ब्रह्मणा) स्तोत्रके बलसे इस शत्रुके (शुष्मं) बलको (ऐरयः) हिला दिया (अध) तो तूने वह सबसे (प्रथमं) पहला (महत्) बडा (वीर्यं) पराक्रम (अकृणोः) किया । इस कारण (जीरयः) नाश करनेवाले, तुझ (रथे रथेन) रथ पर बैठे (हरि-अश्वेन) लाल घोडोंवाले इन्द्रसे, (विच्युताः) नीचे गिराये हुए असुर (सध्र्यक्) एक साथ मिले हुए भी भयसे (पृथक्) पृथक् पृथक् (प्र सिस्रते) भागते हैं ॥ ३ ॥

[१७३] (अध) और (यः) जिस (ईशानकृत्) स्वामित्व देनेवाले (प्रवयाः) उत्कृष्ट अन्नवाले इन्द्रने अपने (मज्मना) बलसे (विश्वा) सारे (भुवना) भुवनोंको (अभि अवर्धत) बढाया । (आत्) फिर उस (वह्निः) आगे बढानेवालेने (ज्योतिषा) तेजसे (रोदसी) दोनों लोकोंको (आ अतनोत्) व्याप्त किया और (दुधिता) दुःखके स्थानमें रखे हुए (तमांसि) अन्धकारोंको और भी (सीव्यन्) बढाते हुए (सं अव्ययत्) चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रकी शक्तियां सोम पीनेके बाद बढती ही जाती हैं । तब वह उन शक्तियोंके कारण शत्रुओंके सम्पूर्ण विघ्नोंको विध्वस्त कर देता है ॥ १ ॥

इन्द्र सोम पीनेके प्रथम समयमें ही बहुत पराक्रम दिखाता है । वह युद्धमें शरीर पर कवच धारण करता और द्यु आदि लोकोंको ठीक स्थान पर रखता है ॥ २ ॥

असुर इन्द्रके पराक्रमसे डर कर, उसे देखते ही इधर-उधर भाग जाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्र अपने बलसे लोकोंकी शक्ति बढाता है । फिर अपने तेजसे सभी लोकोंको व्याप्त कर देता है । पर जो दुष्ट हैं उन्हें वह गाढ अन्धकारमें स्थापित करता है ॥ ४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

१७४ स प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसाऽधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥ ५ ॥

१७५ सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद् विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक् तुविष्वणिः ॥ ६ ॥

१७६ अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३ येन मामहः ॥ ७ ॥

१७७ भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८ ॥

अर्थ— [१७४] (सः) उस इन्द्रने (प्राचीनान्) हिलनेवाले (पर्वतान्) पर्वतोंको अपने (ओजसा) बलसे (दृंहत्) स्थिर किया । उसने (अपां) जलोंके बहाव रूप (अपः) कर्मको (अधराचीनं) नीचेकी ओर (अकृणोत्) प्रवाहित किया । (विश्वधायसं) सबको धारनेवाली (पृथिवीं) पृथिवीको (अधारयत्) धारण किया और अपने (मायया) सामर्थ्य द्वारा (द्यां) द्यौको (अवस्रसः) नीचे गिरनेसे (अस्तभ्नात्) रोका ॥ ५ ॥

१ प्राचीन (प्र-अञ्च्)— इधर उधर चलनेवाले ।

[१७५] (पिता) पालन करनेवाले इन्द्रने (यं) जिस वज्रको (विश्वस्मात् जनुषः वेदसः परि आ अकृणोत्) सभी जन्मधारी पदार्थों एवं धनोंसे उत्कृष्ट बना दिया तथा (येन वज्रेण) जिस वज्रसे (तुविष्वणिः) अत्यन्त गर्जना करनेवाले इन्द्रने (पृथिव्यां शयध्यै) पृथ्वी पर सोनेके लिए (क्रिविं हत्वी नि अवृणक्) क्रिविको मारकर नष्टकर दिया, (सः) वह वज्र (अस्मै) इस इन्द्रको (बाहुभ्यां अरं) भुजाओंसे समर्थ करे ॥ ६ ॥

[१७६] (पित्रोः) मातापिताके (सचा) साथ (सती) रहती हुई पिताके (अमाजूः इव) घरमें बूढी हो जानेवाली कन्याके समान (समानात्) एक ही (सदसः) स्थानसे (त्वा) तुझसे (भगं) धन (आ इये) माँगता हूँ । तू हमारे लिये (प्र केतं) उत्तम अन्न (कृधि) कर दे । तू (उप मासि) धनका दाता है, हमारे पास धन (आ भर) ले आ । (येन) जिस धनसे तू स्तोताओंको (मामहः) बडा बनाता है, (तन्वः) शरीरके लिए उपयोगी वह (भागं) धन हमें (दद्धि) दे ॥ ७ ॥

१ अमा-जूः— घरमें जीर्ण होनेवाली ।

[१७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम लोग (त्वां) तुझ (भोजं) पालक स्वामीको (हुवेम) बार बार बुलाते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (अपांसि) कर्मों और (वाजान्) अन्नोंका (ददिः) दाता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू अपने (चित्रया) अद्‌भुत (ऊती) रक्षाके साधनोंसे (नः) हमारी (अविड्ढि) रक्षा कर । हे कामनाओंके (वृषन्) वर्षकदाता (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (वस्यसः) धनवान् (कृधि) कर दे ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र मेघोंको एकत्र कर जल बरसाता और पृथिवी तथा द्यौको अपने-अपने स्थान पर स्थिर रखता है। ये चलते हुए भी अपनी कक्षाको नहीं त्यागते । द्यौ निराधार होते हुए भी इसी इन्द्रके कारण स्थिर है ॥ ५ ॥

इन्द्रके लिए वज्रका मूल्य बहुत है । उसे वह सभी धनोंसे उत्तम मानता है, क्योंकि वह वज्रकी सहायतासे सभी शत्रुओंको मारता है वह वज्र इन्द्रको शक्तिशाली बनाता है ॥ ६ ॥

जैसे अविवाहिता लडकी पिताके घरमें बैठी पतिकी इच्छा करती है वैसे धनार्थी स्तोता धन की ॥ ७ ॥

इन्द्र अपने स्तोताओंकी रक्षा करता और उन्हें धनवान् बना देता है ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१७८ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

[१८]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१७९ प्राता रथो नवो योजि सस्नि- श्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १ ॥

१८० सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीय- मुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥ २ ॥

१८१ हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योज- मायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ॥ ३ ॥

अर्थ—[१७८] (इन्द्र) इन्द्र! (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है । तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (आ शिक्ष) दे । (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर । तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो । हम (सु वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोतालोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥ ९ ॥

[१८]

[१७९] हे इन्द्र ! तेरा यह (नवः) नया (सस्निः) दानशील, (चतुर्युगः) चार जुओंवाला, (त्रिकशः) तीन कोडे, (सप्तरश्मिः) सात लगाम (दश अरित्रः) दश चक्रवाला, (मनुष्यः) मनुष्योंके लिये उपयोगी (स्वः-साः) स्वर्गतक पहुंचानेवाला (रथः) रथ (प्रातः) प्रातःकाल (योजि) जोडा गया है । (सः) वह (इष्टिभिः) यज्ञोंमें और (मतिभिः) स्तोत्रों द्वारा (रंह्य) गतिमान् (भूत्) हो ॥ १ ॥

[१८०] (सः सः) वह (मनुषः) मनुष्योंकी इच्छाओंका (होता) प्राप्त करानेवाला रथ (अस्मै) इस इंद्रके लिए (प्रथमं) प्रथम, प्रातःकाल यज्ञको पहुँचानेमें (अरं) समर्थ होता है (सः) वह (द्वितीयं) द्वितीय (उतो) और (तृतीयं) तृतीय यज्ञमें ले जानेमें भी समर्थ होता है । यहाँ (अन्ये उ) दूसरे ही (अन्यस्याः) दूसरोंके (गर्भं) गर्भको (जनन्त) बनाते हैं । (सः) वह (जेन्यः) जयशील (वृषा) बलवान् इन्द्र (अन्येभिः) दूसरोंके साथ (सचते) संयुक्त होता है ॥ २ ॥

[१८१] मैंने (इन्द्रस्य) इन्द्रके (रथे) रथमें, (कं) सुख-पूर्वक (आयै) आने-जानेके लिये, (नवेन) नये (सु उक्तेन) उत्तमतासे बोले गए (वचसा) इशारेसे (हरी नु) दोनों घोडोंको (योजं) जोड दिया है । (अत्र) इस यज्ञमें, हे इन्द्र ! (अन्ये) दूसरे (बहवः हि) बहुतसे (विप्राः) बुद्धिमान् (यजमानासः) यजमान (त्वां) तुझे (मो सु) मत (नि रीरमन्) प्रसन्न कर सकें ॥ ३ ॥

भावार्थ— इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है । वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है । वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं, क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥ ९ ॥

हे इन्द्रके रथमें चार जूए, तीन चाबुक, सात लगाम, दश चक्र लगे हुए हैं । वह स्तोताओंके हितके लिये इन्द्रको स्वर्ग तक पहुँचाता और नीचे लाता है ॥ १ ॥

इन्द्र अपने रथसे तीनों यज्ञोंमें पहुँचता है । कुछ स्तोता स्तुतियोंकी रचना करते हैं मानो वे गर्भ बनाते हैं । इन्द्र उन्हीं स्तोताओंके साथ मेल करता है ॥ २ ॥

इन्द्रके रथमें उसके घोडे इशारेसे जोडे जाते हैं । यजमान इससे इतना प्रेम करते हैं कि इन्द्रका दूसरोंके यज्ञोंमें जाना उन्हें सह्य नहीं होता ॥ ३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१८२ आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४ ॥
१८३ आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्राऽऽ षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥ ५ ॥
१८४ आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६ ॥
१८५ मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ७ ॥
१८६ न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥ ८ ॥

अर्थ— [१८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हमारे द्वारा (हूयमानः) बुलाया गया तू इस (सोमपेयं) सोम पीनेके स्थानपर (द्वाभ्यां) दो (हरिभ्यां) घोडोंके द्वारा (आ याहि) आ। (चतुर्भिः) चार और (षड्भिः) छः घोडों द्वारा (आ) आ। (सुमख) उत्तम यज्ञवाले ! तेरे लिये (अयं) यह सोम (सुतः) तैयार है, तू इसे पी। मेरी (मृधः) हिंसा (मा कः) मत कर ॥ ४ ॥

[१८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (विंशत्या) बीस और (त्रिंशता) तीस घोडों द्वारा हमारे (अर्वाङ्) पास (आ याहि) आ। (चत्वारिंशता) चालीस (हरिभिः) घोडोंसे (युजानः) युक्त तू हमारे पास (आ) आ। (पञ्चाशताः) पचास (षष्ट्या) साठ और (सप्तत्या) सत्तर (सुरथेभिः) रथके योग्य उत्तम, घोडोंसे (सोम पेयं) सोमरस पीनेके लिये (आ) आ ॥ ५ ॥

[१८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वाया) तेरे (मदाय) आनन्दके लिये (शुनहोत्रेषु) सुन्दर पात्रोंमें (ते) तुझे (अयं हि) यह (सोमः) सोम (परिसिक्तः) डाला गया है। तू (आशीत्या) अस्सी (नवत्या) नब्बे और (शतेन) सौ (हरिभिः) घोडोंसे (उह्यमानः) ढोये जाकर हमारे (अर्वाङ्) सम्मुख (आ आ याहि) आ ॥ ६ ॥

[१८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (मम) मेरे (ब्रह्म) स्तोत्रकी (अच्छ) ओर (याहि) जा। इसके लिये (रथस्य) रथके (धुरि) जूएमें अपने (विश्वा) सारे (हरी) घोडोंको (धिष्व) जोड। तू (पुरुत्रा) बहुत स्थानोंमें (वि हव्यः) निमंत्रित (बभूथ) हुआ है, हे (शूर) शूर इन्द्र ! तू हमारे (अस्मिन्) इस (सवने) यज्ञमें (मादयस्व) आनन्द मना ॥ ७ ॥

[१८६] (इन्द्रेण) इन्द्रके साथ (मे) मेरी (सख्यं) मित्रता (न वि योषत्) न टूटे। (अस्य) इस इन्द्रका (दक्षिणा) दान (अस्मभ्यं) हमको (दुहीत) प्राप्त होता रहे। हम उसके (वरूथे) उत्तम (ज्येष्ठे) दाहिने (गभस्तौ) हाथके (उप) समीप रहा करें। इसकी कृपासे हम (प्राये प्राये) प्रत्येक युद्धमें (जिगीवांसः) विजयी (स्याम) हों ॥ ८ ॥

१ वरूथे ज्येष्ठे गभस्तौ उप— हम उस इन्द्रके उत्तम और श्रेष्ठ हाथोंके समीप रहें अर्थात् हमपर इन्द्रका वरदहस्त सदा रहे।

भावार्थ— इन्द्रके रथमें अनेक घोडे जोडे हैं। यह हमेशा उत्तम यज्ञ अर्थात् उपकार आदि उत्तम कर्म करनेवाला है। यह जिस यजमानका सोम पीता है, उसकी हर तरहसे सहायता करता है ॥ ४ ॥

इन्द्र अपने अनेक घोडोंसे युक्त रथपर इधर उधर जाता है ॥ ५ ॥

इन्द्र सौ घोडोंके रथपर सवार होकर सोम पीने जाता है ॥ ६ ॥

इन्द्र रथमें घोडे जोड कर यज्ञोंमें आता और वहाँ सोम पीकर तृप्त होता है ॥ ७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१८७ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

[१९]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१८८ अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥ १ ॥

१८९ अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तो ऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।
प्र यद् वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥

अर्थ— [१८७] (इन्द्र) इन्द्र! (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है। तू ऐसो दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (शिक्ष) दे । (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात धन देते समय हमारा त्याग मत कर। तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो । हम (सु वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोतालोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥ ९ ॥

[१९]

[१८८] (यस्मिन्) जिस (प्र दिवि) प्रकाशमें (वावृधानः) बढते हुए (इन्द्रः) इन्द्र (ब्रह्मण्यन्तः च) और ज्ञानवान् (नरः) नेताओंने (ओकः) निवास (दधे) किया, (अस्य) इस उस (अन्धसः) अन्नके (मदाय) आनंदके लिये इन्द्र द्वारा इस (मनीषिणः) बुद्धिमान् (सुवानस्य) यजमानका (प्रयसः) सोम (अपायि) पिया गया है ॥ १ ॥

१ ब्रह्मण्यन्तः नरः दिवि ओकः दधे— ज्ञानी मनुष्य हमेशा प्रकाशमें निवास करते हैं ।

[१८९] (यत्) जब (नदीनां) नदियोंकी (प्रयांसि च) धारायें, (वयः न) पक्षी जैसे अपने (स्वसराणि अच्छ) घोंसलोंकी ओर जाती हैं वैसे, (प्र चक्रमन्त) बहने लगी, उस समय ही (अस्य) इस (मध्वः) सोमके रससे (मन्दानः) प्रसन्न (वज्रहस्तः) हाथमें वज्र धारण किये (इन्द्रः) इन्द्रने (अर्णः वृतं) जलको रोक रखनेवाले (अहिं) अहिको (वि वृश्चत्) छिन्न-भिन्न किया ॥ २ ॥

भावार्थ— जो इन्द्रका मित्र रहता है, उसका दान प्राप्त करता और उसके समीप रहा कहता है वह प्रत्येक युद्धमें विजयी होता है । उसपर इन्द्रकी हमेशा कृपा रहती है ॥ ८ ॥

इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है । वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है । वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं, क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥ ९ ॥

इन्द्र पुराने कालोंकी भांति इन कालोंमें भी यज्ञोंसे तृप्त होता है । ज्ञानी जन सदा प्रकाशमें निवास करते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र वृत्रका घेरा तोडकर जलको बहा देता है । उस समय, जिस प्रकार शामके समय पक्षीगण अपने घोंसलोंकी तरफ उडते हैं, उसी प्रकार पानीके प्रवाह बहने लगे ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd. No. G. 71

सस्ता संस्करण]   [आज ही ग्राहक बनिए

सम्पूर्ण महाभारत

(१८ जिल्दोंमें)

(संस्कृत श्लोक और हिन्दी अनुवाद सहित)

साइज- डबल क्राऊन आठ पेजी, बडा टाइप]   [उत्कृष्ट छपाई व कागज, कुल पृ. सं. १२२१६

प्रधान सम्पादक

म. म. डॉ. पं. श्री. दा. सातवलेकर

सटीक एवं सचित्र महाभारतका यह नवीन संस्करण बहुत शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है, जो १८ भागोंमें सम्पूर्ण होगा।

(१) महाभारतका पूरा सेट (१८ भाग) १००) रु. में मिलेगा। इस कामन पर पुस्तक विक्रेताओं तथा अन्य शिक्षण संस्थाओंको १५ % कमीशन दिया जायगा। डाकव्यय, पेकिंग और रेलभाडा सब ग्राहकको देना होगा।

(२) जो व्यक्तिशः महाभारतका पूरा सेट खरीदना चाहेंगे, उन्हें इस पूरे सेटकी कीमत १००) पर १० % कमीशन दिया जाएगा। डाकव्यय, पेकिंग खर्च और रेलभाडा ग्राहकके जिम्मे रहेगा।

(३) जो व्यक्ति महाभारतके पूरे सेटका अग्रिम मूल्य (Advance) भेजेंगे, उन्हें इस पूरे सेटकी कीमत १००) पर १५ % कमीशन दिया जायगा।

(४) अग्रिम धन (Advance) भेजनेकी सुविधा पं. सातवलेकरजीके ०वें जन्मदिन अर्थात् १९ सितम्बर १९६७ तक ही रहेगी।

अतः आज ही अग्रिम धन भेजकर महाभारतके भागोंके ग्राहक बनकर अल्पमूल्यमें ही इस ग्रंथरत्नका संग्रह करें।

विशेष विवरणके लिए लिखें।

व्यवस्थापक—
" महाभारत प्रकाशन-विभाग "
पोस्ट- स्वाध्याय-मण्डल, पारडी
जि. बलसाड [गुजरात]

मुद्रक और प्रकाशक— व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पो. ' स्वाध्याय-मंडल (पारडी) ' पारडी [बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu